प्रकाशक:—
श्री जैनसाहित्य-वर्धक सभा,
श्रेष्ठि चम्पालाल देवचन्द
शिरपुर (प० खानदेश)

— प्राप्तिस्थान —

[१]

श्री अमृतसूरीश्वरजी ज्ञानमन्दिर,
दौलतनगर, बोरीवली (पूर्व)

[२]

श्री सरस्वती जैन पुस्तक भण्डार,
पण्डित भूरालाल कालीदास
झवेरीवाड, अहम्मदाबाद.

[३]

शाह बालूभाई रुगनाथ,
अम्बाजी वड पासे
भावनगर (सौराष्ट्र)

मुद्रक:—
पं० परमेष्ठीदास जैन
जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर (उ० प्र०)

प्रकाशकीय



आ पुस्तकनी महत्ता तथा उपयोगिता साथेना परिचयमां सुन्दर
समजावी छे. अमने तो आवा गौरवान्वित ग्रन्थनुं प्रकाशन
करवानुं गौरव प्राप्त थयुं छे, एज महद् पुण्य समजाय
छे. आ प्रकाशनमां अनेकनी सहाय
उपयुक्त बनी छे — ते सर्वनो
अमे हार्दिक आभार
मानीए छीए.

आ प्रसंगे अमोने सं० १९९७ मां पूज्यपाद आचार्य महाराजश्रीए
अत्रे करेल चातुर्मास याद आवे छे. ते वृत्तान्त अमोए
'इन्दुदूत' खण्डकाव्य पुस्तकमां जणाव्युं छे. आ
सभानी उपस्थिति ते प्रसंगे थई छे, आवा
प्रकाशनो अनेक अमारे हाथे थाय
एवी अभिलाषा साथे ए
प्रकाशनोथी विश्व
सन्मार्गाभिमुख
बने एम
इच्छीए
छीए.

— प्रकाशक।

परिचय

आत्मा अनन्त ज्ञानादि गुण युक्त छे, परन्तु अनादिकाळथी कर्मना सम्बन्धने कारणे ए जड जेवो, पराधीन, दुःखी अने अबळ भासे छे. आत्माने कोई कोई समय कर्मनुं बळ ओछुं थतां निज-गुणनी झाँखी थाय छे—पोताना ए विशिष्ट गुणोनो आछो अनुभव पण तेने कोई अपूर्व आनन्द उपजावे छे. एवा अनुभवोनी सरवाळो वधतां—आत्माने निजगुणो प्राप्त करवा अने प्राप्त गुणो कायमी स्थिर रहे, ए माटे प्रबळ इच्छा जागे छे. आत्मानो ए अभिलाषा सफळ थाय ते माटे अनेक आत्माओए विविध प्रकारे मार्गदर्शन कराव्युं छे. आत्मा ए भिन्न भिन्न मार्गे धीरे धीरे आगळ वधतो जाय छे—पण तेने कोई एवो मार्ग नथी मळतो के जे मार्गे आगळ वधता ते पूर्णताने प्राप्त करे. एवो मार्ग नथी एम नथी, पण तेनी प्राप्ति सुलभ नथी. एवा शुद्धमार्गने दर्शावनारा करतां ऊंधे मार्गे दोरी जनारा विश्वमां घणां होय छे, एथी पण शुद्धमार्गनी प्राप्तिमां विषमता वधे छे.

आ स्थितिमां शुद्धमार्गनुं स्पष्ट दर्शन कराववा माटे श्रीहरि-भद्रसूरिजी महाराजे प्रबळ पुरुषार्थ कर्यो. मार्ग-उन्मार्ग अने कुमार्गनुं दर्शन करावतो तेओश्रीनो 'शास्त्रवार्ता-समुच्चय' ग्रन्थ ते पूज्यश्रीना प्रबळ पुरुषार्थनी साक्षी पूरतो चिरंजीव जीवे छे. तेओश्रीना विरचित अनेक ग्रन्थो छे. पण आ ग्रन्थनुं महत्त्व कोई अनेरुं छे

प्रस्तुत ग्रन्थ ७०१ श्लोक प्रमाण छे, तेना पर सवा बे हजार श्लोकप्रमाण स्वोपज्ञवृत्ति छे. ते ग्रन्थ वि० सं० १६८५ मां मुंबई-गोडीजी जैन उपाश्रये प्रसिद्ध कर्यो छे. आ ग्रन्थ ऊपर महोपाध्याय श्रीयशोविजयजीमहाराजे सद्ग्रन्थावंध दार्शनिक शास्त्रार्थोथी भरपूर 'स्याद्वादकल्पलता' नामे लगभग पन्दर हजार श्लोकप्रमाण विस्तृत वृत्ति रची छे. ए ग्रन्थ संवत् १६७० मां श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धारना १६ मां ग्रन्थाङ्करूपे प्रकट थयो छे. मूळग्रन्थ-कर्ताए सातसो ये श्लोको एक साथे राख्या छे—तेमां ते ते दर्शननी मीमांसानी शरूआत तथा समाप्ति समजी शकाय छे, पण श्लोकाङ्क जूदा कर्या नथी. ज्यारे पूज्य उपाध्यायजी महाराजे ते ते दर्शनोनी विविध विचारणाने अनुरूप विभागो करीने ग्रन्थने ११ स्तवकमां विभक्त कर्यो छे. तेमां स्तवकदीठ श्लोकसंख्या आ प्रमाणे छे :— १—११२, २—८१, ३—४४, ४—१३७, ५—३६, ६—६३, ७—६६, ८—१०, ६—२७, १०—६४, अने ११—५८, एम सर्व मळीने ७०१ थाय छे.

पूज्य उपाध्यायजी महाराजनी वृत्ति विशिष्ट होवा छतां दार्शनिक विचारोना गंभीर समागमरूप होवाने कारणे तेना वाचन-अध्ययन माटे विशिष्ट योग्यतानी आवश्यक रहे छे. एथीज एना मुद्रण पछीथी पण तेनो उपयोग करनारा गणत्रीना नीकळ्या छे. भंडारोमां केटलीक प्रतिओ पत्रो तेनी यथावत् स्थितिमां रह्या होय-एवी पडी छे. आ वृत्तिमां प्रवेश करवा माटे जो कांइक प्रयत्न करवामां आवे तो तेनो उपयोग वधे एवा आशयथी प्रस्तुत 'कल्पलतावतारिका' रचवामां आवी छे. आ वृत्तिमां स्तवकना

विभागो स्वीकार्या छे. ज्यारे प्रथम आने स्याद्वादकल्पलतानी वांची त्यारे तेमां आवता प्रासंगिक सूक्तोए अमारा चित्तनुं खास आकर्षण कर्युं हतुं. ते सूक्तोने जूदा तारवीने तेने सटीक करवा—अने ए द्वारा कल्पलतामां प्रवेश थाय एवो प्रयत्न करवो ए प्रमाणे विचार कर्यो हतो. ए विचारने अनुसार सूक्तोने पृथक् तारवीने टूंक आलोचन कर्युं हतुं. पण पछीथी जे रूपे आ प्रसिद्ध थाय छे ते प्रकारनुं लेखन व्यवस्थित करवामां ते ते सूक्तो साथे मूलग्रन्थना उपयुक्त श्लोको अने प्रासङ्गिक दार्शनिक विचारो पण उमेर्या; एम करवाथी स्याद्वादकल्पलतामां प्रवेश करवानुं सुलभ थशे – ए स्पष्ट छे.

१–स्तवकः—प्रारम्भमां ग्रन्थकार अने वृत्तिकारना मङ्गल वगेरे विषयोने वर्णवता विशद सूक्तो छे, तेमां पण 'ऐन्द्रश्रेणिनताय' ए कल्पलताकारनो मङ्गलश्लोक उदात्त अने प्रासादिक छे, जे कण्ठस्थ कर्या बाद वारंवार पाठ करवानुं मन थया करे एवो छे. मूलग्रन्थ मङ्गलश्लोक परनी लतामां मङ्गलवादनी विचारणा सूक्ष्म अने नवीन तर्कयुक्तियोथी भरपूर छे, केटलीक युक्तियो तो अहींज जोवा मळे छे. द्वितीय श्लोकमां मोक्षपुरुषार्थनी सिद्धि छे. शास्त्रवार्ता०ना—बीजा श्लोकथी २९ मा श्लोक सुधी सुन्दर उपक्रम कर्यो छे, जे उपदेशरूपे पण उपयोगी छे, तेमांथी चार श्लोक अहीं उद्धृत कर्या छे.

३० मा श्लोकथी चार्वाक (नास्तिक) मतनो प्रारम्भ थाय छे. चार्वाको आत्माने मानता नथी, शरीरादिमां जे चैतन्य जणाय छे ते पृथिवी आदिना संयोगथी जन्मे छे अने ते महाभूतो विखराता चैतन्य नाश पामे छे. प्रत्यक्ष सिवाय अन्य कोई प्रमाणने चार्वाको

मानता नथी. जो केवळ प्रत्यक्ष ज प्रमाण मानवामां आवे अने अनुमान-आगम आदिने प्रमाणस्वरूपे स्वीकारवामां न आवे-तो व्यवहारमां पण अनेक अपरिहार्य दोषो आवे, ए माटे अनुमानादिने प्रमाण मानवा आवश्यक छे. आ चर्चामां प्रासङ्गिक अन्धकारने स्वतंत्र द्रव्य नहिं माननारा नैयायिकनी पण सारी खबर लई लीधी छे. नैयायिकना वचमां प्रवेश माटे जणाव्युं छे के—'पारकी वातमां माथुं मारीने विलम्ब करावता नैयायिकने शुं यथार्थ शास्त्रथी संस्कारितमतिवाळो हुं शिक्षा न करुं ! अर्थात् करूंज.

ग्रन्थकारनो ए श्लोक आ प्रमाणे छे:—

यथा कथायां प्रविशन् परस्य, नैयायिकः कारयति प्रतीक्षाम् ।
तथा यथार्थागमबद्धबुद्धिर्दास्यामि नास्यापि किमेष शिक्षाम् ॥१॥

आम नैयायिकने चूप करीने तर्क-युक्ति-प्रमाणथी आत्मा छे ए सिद्ध कर्युं छे. आत्मसिद्धि थई एटले पराजय पामेला चार्वाकनुं वदन शोकथी श्याम पडी गयुं छे—खरी वात जणावता जूठाजनने दुःख थाय एथी शुं ? ए प्रमाणे चार्वाकमतनो उपसंहार करतां ग्रन्थकारनो नानो पण ध्वनिभर्यो श्लोक स्मरण राखवा जेवो छे, ते आ —

आत्मसिद्धेः परं शोकाल्लोकाः ! लोकायताननम् ।
समालोकामहे म्लानं, तत्र नो कारणं वयम् ॥२॥

चार्वाकनो चर्चाना अनुसन्धानमां ज धर्माधर्म-पुण्यपाप कर्म वगेरे शब्दोथी समजाता अदृष्टनी सिद्धि साधी छे. ए प्रमाणे प्रथम स्तवक परिपूर्ण कर्यो छे.

२—स्तवक—आत्मा अने अदृष्ट सिद्ध थया एटले विश्वतन्त्रना सञ्चालक बे महत्त्वना अङ्ग सिद्ध थया. विश्वतन्त्रनुं

[illegible]

(१) काल—जगत कालाधीन छे, कोई कार्य [illegible] काळ [illegible] होय. काळ [illegible] छे, काळ [illegible] छे अने काळ [illegible] छे. [illegible] वगेरे पण काळे थया अने काळे गया, [illegible] काळनुं महत्त्व जणाय छे. [illegible] अवस्था अने [illegible] काळा-धीन छे ए स्पष्ट छे. बाल्यादि अवस्थामां काळ प्रधान छे. आम केटलाक दार्शनिको काळने सर्व कार्योनो कर्ता मानीने [illegible] जाय छे.

(२) स्वभाव—स्वभाव, प्रकृति एज सर्व कार्य करे छे एम माननारा कहे छे—के गमे तेटलुं करो पण जेनो जेवो स्वभाव होय एवुंज कार्य थाय छे, कलाको सुधी अग्नि उपर राखो पण कोरडु मग सीझशे नहि कारणके तेनो ते स्वभाव नथी. माटीमांथी घट थाय छे अने वस्त्र तन्तुओथी थाय छे, ते स्वभावने कारणेज. मोरना पींछाने कोण चीतरे छे? स्त्रीने दाढीमूछ केम उगता नथी? हथेलीमां के कपाळमां वाळ केम नथी? पक्षीओ आकाशमां अविरत उडी शाथी शके छे? माछलीओ शाथी पाणीमां विहरे छे? आ सर्व स्वभावाधीन छे. ए प्रमाणे स्वभाववादी सर्वत्र स्वभावने ज आगळ करे छे.

(३) नियति—नियति, भवितव्यता, भाविभाव, जे थवानुं होय तेज थाय, इत्यादि विचार धरावनारा कार्यमात्रमां नियतिने कारण माने छे. गमे तेटलुं करवामां आवे पण होनहार मिथ्या थाय नहिं, ए एमनो मुद्रालेख छे. कोई पण कार्य माटे नियतिवादीने पूछो तो कहेशे के ए तो एमज थवानुं हतुं, कार्य न थाय तो कहेशे के एतो थवानुंज न हतुं, ए रीते भवितव्यतावादीओ मतिनो सर्व निचोड भवितव्यताने अर्पण करी दे छे.

(४) कर्म—कर्म, भाग्य, अदृष्ट, पुण्य-पाप, पूर्वकृत वगेरे समानार्थक शब्दो छे. कर्मवादीओ कर्मवश कार्यमात्र थाय छे, कर्मथी दुःखी सुखी बने छे अने सुखी दुःखी थाय छे. रङ्क राजा थाय अने राजा रङ्क बने, ए कर्मनी बलहारी छे. कर्म नचावे ए प्रमाणे सर्वे नाचे छे. आम कर्मवादीओ कर्मनेज प्रधान माने छे.

(५) पुरुषार्थ—यत्न, उद्यम, पुरुषार्थनेज कार्यमां कारण माननारा कहे छे के काळ-भाविभाव-स्वभाव के कर्मने आगळ करीने हाथ जोडीने वेसी रहेवुं ए मूढता छे. असाध्य पण प्रयत्नथी साध्य बने छे. कल्पनामां पण न आवी शके एवा कार्यो उद्यमथी सिद्ध थया छे, ए हकीकत छे. इत्यादि कहीने उद्यमवादीओ पुरुषार्थ उपरज निर्भर रहे छे.

काळादि पांचेमां आंशिक कर्तृत्व छे अने पांचे एकत्रित थाय त्यारेज तेमां पूर्ण कर्तृत्व छे ए सिद्धान्त छे. कोई पण कार्यने सूक्ष्मदृष्टिए विचारतां तेमां पांचेनो यथायोग्य अंश स्पष्ट जणाशे.

केरी आपवानो स्वभाव आंबानो छे—लिंबडामां केरी आवती नथी. आंबो पण योग्य काळे फळे छे. फळेला आंबामां पण भवितव्या-

नुसार मंजरी आदि आवे छे, पूर्वकृत सुकृतानुसार फळरूपे ते परिणमे छे. अने उद्यम न करवामां तो कांई पण ऊपजतुं नथी, रक्षणादि उद्यम पण आवश्यक छे.

सम्मतितर्क महाग्रन्थमां श्रीसिद्धसेनदिवाकरे प्रौढशब्दमां आ हकीकत जणावी छे— ते आ प्रमाणे—

कालो सहाव णियई, पुव्वकयं पुरिसकारणेगन्ता ।
मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ हुन्ति सम्मत्तं ॥

आ पंच समवायवादने विशदरीते समजावतो द्वितीय स्तवक छे.

३–स्तवक—त्रीजा स्तवकमां मुख्यत्वे सांख्यमतनी विचारणा छे. सांख्य अने योग बहुधा सर्व विचारोमां मळता छे, फक्त सांख्ये ईश्वरनुं जगत्कर्तृत्व स्वीकार्युं नथी अने योगे स्वीकार्युं छे. काळादिनी विचारणाना अनुसन्धानमां केटलाक ईश्वरनेज जगत्ना कर्ता-नियन्तारूपे माने छे, ए चर्चा अहिं गम्भीरपणे करी छे. आ चर्चा खूबज महत्त्वनी छे. आ स्तवकनी ए रीते अति उपयोगिता छे. ईश्वरना कर्तृत्वने स्थापित करनारा वादीओमां पतञ्जलि अने अक्षपाद (नैयायिक) मुख्य छे. पूर्वपक्षमां ईश्वर जगत्कर्त्ता होवोज जोईए ए वात जणावी छे. तेमां ते ते ग्रन्थोना प्रमाणो पण रजू कर्या छे. उदयनाचार्यनो कुसुमाञ्जलि ग्रन्थ आ विषयमां खूबज विशिष्ट छे. तेमां—

कार्यायोजनधृत्यादेः, पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च, साध्यो विश्वविदव्ययः ॥

ए श्लोक प्रधान छे, तेनुं उपपादन करीने पछी क्रमशः तेनुं खण्डन कर्युं छे. ईश्वरनु कर्तृत्व उपपादान करवामां जैनदर्शनने

बाध न आवे एवी केटलीक विचारणाओ पण दर्शावी छे, तेमां ज्ञातृत्वने कर्तृत्व मानवुं ए एक छे अने बीजी आत्माने कर्ता मानवो. वास्तविकता पण एज. छे—आ रीते जगत्कर्तृत्वने सङ्गत करवामां ते ते विचारणा दर्शावनारानुं गौरव जळवाई रहे छे. साङ्ख्य-दर्शनकार कपिल अने पतञ्जलि पक्षपात जन्मावे एवा विशिष्ट महात्माओ छे, तेमनां कथनने सङ्गत करवुं ए समुचित छे. श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज पण आ चर्चाने अन्ते उपसंहार मां कहे छे—

शास्त्रकारा महात्मानः, प्रायो वीतस्पृहा भवे ।
सत्त्वार्थसम्प्रवृत्ताश्च, कथं तेऽयुक्तभाषिणः ॥३॥१५॥
सर्वभावेषु कर्तृत्वं, ज्ञातृत्वं यदि सम्मतम् ।
मतं नः सन्ति सर्वज्ञा, मुक्ताःकायभृतोऽपि च ॥

ए श्रीहेमचन्द्राचार्यनुं वचन पण सुन्दर समन्वयप्रेरक छे.

ईश्वरवादनो समाप्ति पछी साङ्ख्य जे प्रकृतिजन्य जगत्ने माने छे, ते पचीस तत्त्वोनी मीमांसा करी छे. प्रकृतिथी महान्, महत्तत्त्वथी अहङ्कार, अहङ्कारथी पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच तन्मात्रा अने मन एम सोळ. पांच तन्मात्राथी पांच भूत, अने स्वतन्त्र आत्मा आ पचीस साङ्ख्याभिमत तत्त्वो छे. साङ्ख्य सत्कार्यवादने माने छे. आत्मा कर्ता नथी पण भोक्ता छे इत्यादि विचारो केवा विसङ्गत छे अने ते कई रीते सङ्गत करी शकाय ए दर्शाव्युं छे.

प्रकृति ए कर्मप्रकृति छे, तेथीज सर्व कांई जन्मे छे. निश्चय-नयथी आत्मा अलिप्त छे, इत्यादि विचार-भूमिकाओ द्वारा साङ्ख्यने पोता तरफ खेंची लईने श्रीहरिभद्रसूरिजी सुन्दर समन्वय साधे छे.

अर्थो ज्ञानसमन्वितो मतिमता, वैभाषिकेणेष्यते ।
प्रत्यक्षो नहि बाह्यवस्तुविसरः, सौत्रान्तिकैराश्रितः ॥

योगाचारमतानुगैरभिमता, साकारबुद्धिः परा ।
मन्यन्ते किल मध्यमाः कृतधियः, स्वस्थां परां संविदम् ॥

बौद्धदर्शननी मुख्य बे विचारणाओ छे. एक क्षणिकवाद अने बीजो विज्ञानवाद. 'यत् सत् तत् क्षणिकम्' जे कांई सत् छे ते सर्व क्षणिक छे, ए तेओनो मुख्य सिद्धान्त छे. आ क्षणिकवादने सिद्ध करवा माटे तेओ पारावार प्रयत्न करे छे. एकान्ते जो सर्व क्षणिक छे ए मानवामां आवे तो विश्वतन्त्रनी सर्व व्यवस्थानो विनाश थाय, कांई करवा जेवुं न रहे. सापेक्षभावे क्षणिक मानवुं ए सत्य छे. क्षणिकवादनी जेवी—जे कांई छे ते सर्व विज्ञान-स्वरूप छे—विज्ञानज पदार्थोकारे परिणमन पामे छे अने पदार्थनी भ्रान्ति जन्मावे छे. ए पण बौद्धोनी विचित्र-विचारणा छे. आम जो पदार्थमात्रने विज्ञानरूप मानवामां आवे तो सर्व एकज थई जाय अने सर्व एकस्वरूप छे ए कदी जणातुं नथी, भिन्न भिन्न स्वरूप छे ए तो स्पष्ट जणाय छे. ए भ्रम छे एम कहेवुं बराबर नथी. भ्रम सनातन सर्वने न होय, भ्रममां फसाएला भ्रम छे एम कहे ए सत्य केम मनाय ! आ त्रण स्तवकोमां ते ते विचारणाओ उपपादन करीने तेनुं खण्डन कर्युं छे. उपाध्यायजी महाराज तो प्रसङ्गे प्रसङ्गे विनोद पण एवो सुन्दर करे छे—जे आपणे जोयाज करीए. सौत्रान्तिकनो उपहास करतां तेओश्रीए कह्युं छे जे—सर्व क्षणिक छे ए प्रमाणे सिद्ध करवाना आग्रहमां आसक्त थयेल सौत्रान्तिक 'इत एकनवतौ कल्पे' 'कप्पट्ठाइ पुहई' एवा बुद्धना सूत्रोनो विनाश

आर्हतसिद्धान्तनुं अहिं करेलुं निरूपण टूकमां आ प्रमाणे छे.

(१) जगत् जीवाजीवात्मक छे.

(२) उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप सत् छे.

(३) स्याद्वादथी सत्‌नी यथावत् विचारणा सङ्गत बने छे.

(४) सप्तभङ्गीथी स्याद्वादनुं स्वरूप स्थिर थाय छे.

(५) नयवाद विसङ्गतिओने दूर करवा समर्थ छे.

आ सर्व सातमा स्तवकमां सारी रीते समजाव्युं छे.

८–स्तवक—आठमा स्तवकमां वेदान्तदर्शननी विचारणा छे. वेदान्तीओ 'ब्रह्म सत्, जगन्मिथ्या' ए सूत्रने प्राधान्य आपे छे. ब्रह्म सिवाय अन्य कांई छेज नहिं, देखातुं जगत् एतो प्रपञ्च छे. माया छे. स्वप्नमां जेम देखाय छे तेना जेवुं छे. अद्वैतवादना निरसन माटे आ एक सरल तर्क याद राखवा जेवो छे. मायाने वेदान्तीओ माने छे. ए माया सत् छे के असत्? जो सत् छे तो ब्रह्म ए एकज सत् छे, ए रहेतुं नथी. अने जो माया असत् छे तो माया छे एम केम कही शकाय? ए तो वदतो व्याघात छे. पदार्थ मात्र कूटस्थ नित्य छे एवी पण वेदान्तीनी मान्यता छे. बौद्धोथी तद्दन ऊलटी दिशानी ए विचारणा छे. सापेक्षभावे पदार्थो नित्य छे एम मानवुं ए सङ्गत छे. वेदान्ती ज्यां त्यां भ्रमनेज जोया करे छे, ते माटे पू० उपाध्यायजीम. तेने सारी शिक्षा करे छे. ते आप्रमाणे—

मुक्तौ भ्रान्तिर्भ्रान्तिरेव प्रपञ्चे, भ्रान्तिः शास्त्रे भ्रान्तिरेव प्रवृत्तौ।
कुत्र भ्रान्तिर्नास्ति वेदान्तिनस्ते, क्लृप्ता मूर्तिर्भ्रान्तिभिर्यस्य सर्वा॥

आ पछीना बे सूत्रो ते ते दर्शनोनी खासीयतो समजवा माटे याद राखवा जेवा छे. ते आ—

[illegible] ।
[illegible] ॥
उन्मार्गं [illegible] पुनरपि, [illegible] ।
[illegible] जैनागमः [illegible] ॥१॥
न [illegible] शक्यते—
[illegible] न महिमा यस्य निन्दितः ॥
मरालाः सेवन्ते ललितं सरसं जैनमतगाः ।
सरोजं स्याद्वाद-प्रसरमकरन्दं कृतधियः ॥ २ ॥

छेवटे स्याद्वादनी स्तुति करवापूर्वक आठमो स्तवक समाप्त कर्यो छे.

९-स्तवक—नवमा स्तवकमां मोक्षवादनी चर्चा छे. आत्माने मान्या छतां जो मोक्ष-सिद्धि न थाय तो आत्माने मानवो के न मानवो ए बन्ने बराबर छे. मोक्ष शुं छे ? क्यां छे ? केवी रीते ते प्राप्त थाय ? वगेरे विचारोमां ते ते दर्शनो मार्ग-भूल्या मुसाफरनी माफक जेम फावे तेम चलावे जाय छे. आ स्तवकमां ते ते सर्वे क्यां भूल्या छे ते विचारणा करी छे. तेमां ते ते दर्शनोनी मोक्षविषयक मान्यता केवी छे, ते सङ्गत कई रीते नथी, मोक्षप्राप्तिना साधनोमां केवी विसङ्गतिओ तेओना मते आवे छे वगेरे दर्शाव्युं छे.

आज स्तवकमां सम्यग्-ज्ञानदर्शनचारित्र ए मोक्षमार्ग छे ए समजाव्युं छे. अने तेमां प्रासङ्गिक दिगम्बरो जे वस्त्रधारीने मुक्ति नथी, स्त्रीने मुक्ति नथी, ए प्रमाणे माने छे—तेनुं सचोट निरसन कर्युं छे. मोक्षनी ते ते दर्शनकारोनी मान्यताओनो आ स्तवकमां अपूर्व संग्रह छे. ते मान्यताओ जाणवानी इच्छावाळाने माटे आ स्तवक अतिशय उपयोगी छे.

१०–स्तवक—दशमा स्तवकमां मीमांसकोनी मान्यता संबंधी
मांसा मुख्यत्वे करी छे. ए विचारणाने अनुरूप प्रारंभना श्रण
ो रोचक अने भावपूर्ण छे.

मीमांसको सर्वज्ञने स्वीकारता नथी. ए मान्यतानी सिद्धि माटे
ोए घणु घणुं लख्युं छे. श्लोकवार्तिक वगेरे ग्रन्थोमां विस्तारथी
विचारणा आवे छे. अहिं तेनुं संकलन करीने प्रथम तेओ
र्वज्ञ नथी' ए विषयं केवी रीते रजू करे छे, ए जणाव्युं छे—
रपक्षमां 'सर्वज्ञ छे' ए वातनी सिद्धि करी छे.

आ विचारणा करता प्रासङ्गिक—वेद पौरुपेय छे. ए पण
वेच्युं छे. प्रमाणपञ्चकनी विवेचना करी छे. वेदविहित हिंसा
रणीय छे, ए प्रमाणेना मीमांसकना मन्तव्यनु सख्त शब्दोमां
डन कर्युं छे. सर्वज्ञवादमां अनुरूप केवलमुक्तिनी विशद विचारणा
ी छे. दिगम्बरो केवलीने भोजन स्वीकारता नथी, ए मान्यता
ध्या छे, ए समजाव्युं छे. ए प्रमाणे दशमस्तवक पूर्ण कर्यो छे.

११–स्तवक—अगीयारमा स्तवकमां शब्द अने अर्थना
म्बन्धनी विचारणा छे. बौद्धो वगेरे अपोहादिनी जे स्थिति जणावे
तेमां केवा दोषो आवे छे, ते सर्व समजाव्युं छे. छेवटे मुक्तिमां
परमानन्दस्वरूप सुख छे, ते केवुं छे, कई रीते छे, इत्यादि
युक्तिथी सिद्ध कर्युं छे. छतां ए अनिर्वचनीय छे, ए पण कह्युं छे.

छेवटे ग्रन्थ समाप्त करतां आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजीमहाराजे
मीरश्लोक रच्यो छे, जे वारंवार पठनीय छे. ते आ—

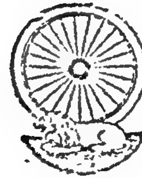
यं बुद्धं बोधयन्तः शिखिजलमरुतस्तुष्टुवुर्लोककृत्यै,
ज्ञानं यत्रोदपादि प्रतिहतभुवनालोकवन्ध्यत्वहेतुः ॥

सर्वप्राणिस्वभाषापरिणतिसुभगं कौशलं यस्य वाचां
तस्मिन् देवाधिदेवे भगवति भवता धीयतां भक्तिरागः ॥१॥

आवा सुन्दर ग्रन्थनुं वारंवार अध्ययन करीने मति निर्मळ करवी ए जन्मनुं परम सौभाग्य छे.

स्थल—
श्री करमचंद जैन पौषधशाला
ईरलाब्रीज, मुंबई-२४

— विजयामृतसूरि ।
चैत्र वदि पञ्चमी,
दि० २३-५-५८



विशुद्धि-पत्रकम्



अशुद्धम्	शुद्धम्	पत्राङ्कः	पंक्तिः
ध्वंस	ध्वंसस्य	६	८
इत्याकार,-	इत्याकार-	६	१६
शब्दानृत-	शब्दादनृत	१३	१५
एवकार	एवकारः	१३	१८
हेतेपु	हेतुपु	१४	१७
क्रोधादिनां	क्रोधादीनां	१४	१८
ज्ञानादाव	ज्ञानादावत्र	१६	७
निहिता	निहता	२४	१०-१५
तत्तथा	तन्तथा	२४	२१
यद्वाशात्	यद्वशात्	२७	४
विस्तारोनस्यात्	विस्तारः	३३	१
निजमन-	निजमत	३४	६-१४
भीविनाम्	भीतीनाम्	३५	२२
नयतिजा	नियतिजा	४२	७
हेतुत्वे	हेतुत्व	४५	१८
श्रयते	श्रूयते	५१	७
ज्ञानाद्य	ज्ञानाद्या	५४	१५

अशुद्धम्	शुद्धम्	पत्राङ्कः	पंक्तिः
स्यानुच्छेद	स्याप्युच्छेद	५६	२
स्वभाववद	स्वभाववद्	५६	८
वसानौ	वसाने	६३	१७
स्वीकारणम्	स्वीकरणम्	६३	२१
स्वभाव-	स्वाभाव	६४	४
नैय	नैव	६४	७
रूपप्य	रूप्य	६४	२२
ऽऽदि	ऽऽरोग्यादि	७०	१६
सा	स	७१	४
अनव	आनव	८४	१४
सेन	सेनः	८५	२१
धातौ	घातौ	८७	२
योग	योगि	६६	११
मज्ञनम्	ज्ञनम्	१०१	१५
तवा-	तव	१०१	२१
-भाव	अभाव	१०१	२१
-द्वार	द्वार	१०४	४
मनमा	मता	१०६	७
रचनैः,	रचनेभ्यः	११०	१६
पक्त	पत्र	११२	१
रायन्त्र	रान्यत्व-	११२	६
प्रत्यान्तराण्यर्थोलम्भ-	प्रत्ययान्तराण्यर्थोपलम्भ	११२	८

अशुद्धम्	शुद्धम्	पत्राङ्कः	पंक्तिः
सञ्ज्ञात-	सञ्ज्ञात	११५	६
गातो	गतो	१२२	१७
मुमोद-	मुमुदे	१२५	१८
सन्ध	सन्धा	१२६	४
भता-	भूता	१२६	२२
ज्ञा-	ज्ञाना	१३३	३
विशीर्ण	विशीर्ण	१३५	५
सश्र-	साश्र	१४५	११
विनश्यते	विनाश्यते	१४८	१७
प्रदेशि	प्रादेशि	१५३	७
कायभा-	काभा	१६५	६
घटौ	घटो	१६५	८
काश्चि	कश्चि	१६६	१०
वृत्यार्थ-	वृत्यर्था	१७१	२०
क्लृप्तसप्तभङ्गस्वा-	क्लृप्तसप्तभङ्गेष्व	१७३	१७
विहित-	विहितस्य	१८४	७
घटारदे	घटादे	१९०	११
स्वध्यायस्त	स्वाध्यायाध्यस्त	१९४	१६
भ्रातिः	भ्रान्तिः	२०४	२२
त्वाध्व	त्वादुध्व	२०७	७
ताज्ञा	तज्ञा	२०८	२
प्रकारो	प्रकरो	२०८	७

(१)

श्रीमच्छास्त्रकलाकलापकलितो, हर्षप्रकर्षाञ्चितो,
रिक्तो नैव कदापि तर्कनिकरैर्भण्डारको धीमताम् ।
द्रव्याणां गुणपर्ययैः स्थितिभृतां, सूर्यस्तमोदारणै-
रिन्दुर्जैनवचोऽम्बुधौ विजयते, श्रीभद्रसूरिर्हरिः ॥

(२)

जग्रन्थ ग्रन्थरत्नानां, नानावर्णैर्विराजितः ।
आचार्य्यहरिभद्रेण, हारस्तर्कगुणोज्ज्वलः ॥

(३)

यशोऽधिगन्तुकामेन, यशोवाचकवाचिकम् ।
यशस्विचेतसा चिन्त्यं, सत्तर्कभरसंभृतम् ॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमः ॐ

अनन्तलब्धिनिधानाय श्रीगौतमस्वामिने नमः ।

शासनसम्राट्-श्रीविजयनेमिसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

१४४४ ग्रन्थसूत्रसूत्रधार-सूरिपुरन्दर-स्याद्वादमतमण्डन-मण्डनभूत-

श्रीहरिभद्राचार्यविरचितस्य—

शास्त्रवार्तासमुच्चयस्य

महामहोपाध्याय-महातार्किक—

श्रीयशोविजयजिद्गणिवरविरचितायाः कल्पलतायाः अनुसारिणी

शास्त्रविशारद-कविरत्न-पीयूषपाणि-

भट्टारकाचार्यश्रीविजयामृतसूरीश्वरप्रणीता—

श्री कल्पलतावतारिका टीका

— प्रथमः स्तबकः —

सर्वे नया विघटिता निरपेक्षभावा-
दन्योऽन्यरोधचरणादहितं चरन्ति ।
स्याद्वादपक्षसरणाद्धितचारिणः स्युः,
स्याद्वादसन्मतमनन्तनयं नमामि ॥१॥

भयाक्रान्तं विश्वं निजनिजमतोन्मादकलिलं,
भयोन्मुक्तं तत् स्या-दविरतमनेकान्तसरणात् ।
यया स्याद्वादात् तद् भवति तदवोचज्जिनपति-
र्नुमः सत्स्याद्वाद-प्रवरवचनं वीरमभयम् ॥२॥

सर्वान् नयान् समीकर्तुं, हारिभद्रं वचः शुचि ।
उचितं वर्तते प्रौढं, *शास्त्रवार्तासमुच्चये* ॥३॥

गभीरं तद्वचो वेत्तुं, स्वोपज्ञां विवृतिं व्यधात् ।
नातिशब्दां न चाव्यक्तां, *श्रीहरिभद्रसूरिराट्* ॥४॥

नव्यन्यायपरिष्कार-परिष्कृता बुधोचिता ।
कल्पलता-महावृत्तिः, *श्रीयशोवाचकैः* कृता ॥५॥

तां गभीरार्थगूढार्थां, वगाहितुमभीप्सया ।
विधीयते शुचिस्पष्टा, *कल्पलतावतारिका* ॥६॥

कल्पलता कृपा यस्य, शं ददाति पदे पदे ।
नमस्तस्मै मुनीशाय, *श्रीमते नेमिसूरये* ॥७॥

तत्कृपालेशमाहात्म्यं, कृत्येऽत्र कारणं महत् ।
तद्विना चेतनो मूढः, स्याज्जडोऽपि ततः सुधीः ॥८॥

शास्त्रोदधिं विगाह्येदं, शास्त्रं चक्रुश्चिरन्तनाः ।
तत्रावतारिका बद्धा, *विजयामृतसूरिणा* ॥ ९ ॥

शास्त्रवार्तासमुच्चयाभिधानं ग्रन्थरत्नमन्यमतमीमांसापूर्वकं स्याद्वादसिद्धान्तसमर्थनं विधातुं साङ्गोपाङ्गं व्याख्यातुकामो न्यायविशारद-न्यायाचार्यः श्रीमान् यशोविजयवाचकः प्रत्यूहव्यूह[illegible] मङ्गलं निबध्नाति-ऐन्द्रश्रेणि[illegible]

(कल्पलता)

ऐन्द्रश्रेणिनताय दोपहुतभुग्–नीराय नीरागता–
धीराजद्विभवाय जन्मजलधेस्तीराय धीरात्मने ॥
गम्भीरागमदेशिने मुनिमनो–माकन्दकीराय स–
न्नासीराय शिवाध्वनि स्थितिकृते वीराय नित्यं नमः ॥१॥

अन्वयः–ऐन्द्रश्रेणिनताय, दोपहुतभुग्नीराय, नीरागताधीराजद्विभवाय, जन्मजलधेः तीराय, धीरात्मने, गम्भीरागमदेशिने, मुनिमनोमाकन्दकीराय, सन्नासीराय, शिवाध्वनिस्थितिकृते, वीराय नित्यं नमः ॥१॥

(कल्पलतावतारिका)

ऐन्द्रश्रेणिनताय—इन्द्रस्य देवाधिपतेरियमैन्द्री सा चासौ श्रेणिः पङ्क्तिरैन्द्रश्रेणिः, तया नताय नमस्कृताय, देवेन्द्रकदम्बकप्रणतायेत्यर्थः । दोपहुतभुग्नीराय—दोपा दूपणान्येव हुतभुजो वह्नयो दोपहुतभुजस्तेपां कृते नीराय जलरूपाय, दोपानलशमनसलिलस्वरूपायेत्यर्थः । अत्रालङ्कृतिः परम्परितरूपकम् । नीरागताधीराजद्विभवाय-रागाद् अनुरागात्, द्वेपात्, रागद्वेपाभ्याञ्च निर्गतो नीरागः, तस्य भावो नीरागता, तया संवलिता धीः- बुद्धिर्नीरागताधीः 'मयूरव्यंसकेत्यादयः' ३।१।१२६। इत्यनेन शाकपार्थिवादेराकृतिगणत्वान्मध्यमपदलोपी समासः । 'रागोऽनुरागे क्लेशादौ, मात्सर्य्यें लोहितादिपु' इति शाश्वतः, तया राजमानो दीप्यमानो विभव ऐश्वर्य्यं यस्य स नीरागताधीराजद्विभवस्तस्मै तथा-'विभवो रैमोचैश्वर्ये'इति मेदिनी । यद्वा नीरागता रागाभावः, वीतरागतेति, धीः सम्यग्बुद्धिः केवलज्ञानं वा, नीरागता च धीश्च नीरागताधियौ ताभ्यां राजमानोविभवो यस्य तस्मै तथा, सम्यग्बुद्धि केवल-

[illegible]
नीरागतापदस्य पुनर्निपातोऽनुपपत्तिः । जन्मजलधेः [illegible]
तीराय–अपरतटात्मकाय, [illegible] इति
भावः । 'भवः क्षेमेशसंसारे, सत्तायां प्राप्तिजन्मनोः' इति मेदिनी ।
धीरात्मने–धीरो धैर्यगुणसम्पन्न आत्मा मनो मनीषारूपस्वभावो यस्य स धीरात्मा तस्मै तथा । 'आत्मा पुंसि स्वभावेऽपि, प्रयत्न-मनसोरपि । धृतावपि मनीषायां, शरीरब्रह्मणोरपि' इति मेदिनी ।
गम्भीरागमदेशिने–गम्भीरो गूढाभिप्राययुक्तो यः आगमः शास्त्रं गम्भीरागमस्तं देशितुं शीलो गम्भीरागमदेशी 'अजातेः सुपि' । ३।१।१५४ इत्यनेन तच्छीले णिनप्रत्ययस्तस्मै तथा । अनन्तनयगम-भङ्गगभीरागमदेशनसमर्थायेति भावः । **मुनिमनोमाकन्दकीराय**–मुनीनां महाव्रतधारिणां मनांस्यन्तःकरणानिमुनिमनांसि तान्येव माकन्दाः सहकारतरवः तत्र कीराय कीररूपाय कीरा यथा रसालपादपेष्वानन्दसन्दोहविकसितमनसा निवसन्ति तथैव मुनिजनानां चित्तेषु हर्षेण स्थितिशालिने, मुनिवृन्दान्तःकरणानन्ददायिने इति भावः । **सन्नासीराय**–सत्सु सज्जनेषु नासीरोऽग्रगण्यः सन्नासीरस्तस्मै तथा 'नासीरं त्वग्रयानं स्यात्' । ३।४६४ । इत्यभिधानचिन्तामणिः । **शिवाध्वनि**–मोक्षमार्गे, **स्थितिकृते**– निवासशीलाय । **वीराय**–भगवते वर्द्धमानस्वामिने महावीरायार्हते इति । **नित्यं**-सर्वदा । **नमः** नमस्कारः, अस्तु । नमःशब्दयोगे चतुर्थीविभक्तिरवसेया, तेनास्मि तं प्रति प्रणत इत्यर्थो व्यज्यते । नमस्कारश्च स्वावधिकोत्कृष्टत्वज्ञाना-नुकूलकरशिरःसंयोगाद्यात्मकव्यापारादिरूपोऽवसेयः । वृत्तं शार्दूल-

विक्रीडितम्। तल्लक्षणन्तु 'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः, शार्दूलविक्रीडित'मिति। अलङ्कारस्त्वनुप्रासः स्पष्टः। श्रीवर्धमानमहावीरस्वामिविषयककविनिष्ठरत्याख्यो भावश्चाभिव्यज्यते इति ध्वनिकाव्यमिदम्। अनुप्रासाधिक्येऽपि कविशक्तिप्रौढिवशात् प्रसादगुणाभिव्यञ्जनद्वारेण तस्याप्यत्र भावध्वनिपोषकतैवावसेया ॥१॥

विद्याधिष्ठातृतया शारदायास्तत्प्रदत्वेन गुरूणाञ्चापि नमस्कारो ग्रन्थकर्तुर्नानुचित इत्याशयेनाह—

(कल्पलता)

प्रणम्य शारदां देवीं, गुरूनपि गुणैर्गुरून्।
विवृणोमि यथाशक्ति, शास्त्रवार्तासमुच्चयम् ॥२॥

अन्वयः—शारदाम्, देवीम्, गुणैः, गुरून्, गुरून् अपि, प्रणम्य, यथाशक्ति, शास्त्रवार्तासमुच्चयम्, विवृणोमि ॥२॥

(कल्पलतावतारिका)

शारदाम्—सरस्वतीम्। देवीम्—देवताम्। गुणैः—ज्ञानादिभिः, करणे तृतीया ... कर्त्रैविशेषः, गुरून्—श्रेष्ठान्, गुरून्—धर्मोपदेशकान् विद्यादातॄन् वा, अपि—समुच्चये "अपि सम्भावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये" इति मेदिनी। प्रणम्य—प्रकर्षेण नत्वा। यथाशक्ति—स्वशक्त्यनुसारेण। शास्त्रवार्तासमुच्चयम्—शास्त्राणां बौद्धवैशेषिकादिदर्शनानां या वार्ताः सिद्धान्तप्रवादास्तासां समञ्चय एकत्र सङ्कलनम् शास्त्रवार्तासमुच्चयः, "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत्प्रकाशते" इति न्यायाश्रयणात् समुच्चिताः शास्त्रवार्ता इत्यर्थः, तन्तथा। विवृणोमि—व्याख्यानादिना प्रकाशयामि।

स्वकीयमौद्धत्यं परिहरति कल्पलताकारः हारिभद्रमित्यादिना—

(कल्पलता)

हारिभद्रं वचः क्वेदं, बहुतर्कपचेलिमम् ।
क्व चाहं शास्त्रलेशज्ञस्तादृक्तन्त्राविशारदः ॥२॥

अन्वयः—इदं, हारिभद्रं, बहुतर्कपचेलिमं, वचः, क्व ? शास्त्रलेशज्ञः, तादृक्तन्त्राविशारदः, अहं, च, क्व ?

(कल्पलतावतारिका)

इदम्–शास्त्रवार्तासंग्राहकमेतत् प्रत्यक्षदृश्यमानम्। हारिभद्रम्–स्वनामधन्यस्य सूरिचक्रचक्रवर्तिन इदं हारिभद्रम्। तदुदीरितमित्यर्थः। बहुतर्कपचेलिमम्–नानाविधयुक्तिपरिपूर्णम्। तर्कनिवहपरिपक्वमिति यावत्। वचः–श्लोकात्मकं वचनं वाक्यं वा। क्व–कुत्र, अतिगहनमित्यर्थः। शास्त्रलेशज्ञः–शास्त्राणां सिद्धान्तानां लेशो लवः शास्त्रलेशस्तं जानातीति तथा अल्पविषयज्ञातेति यावत्। अत एव तादृक्तन्त्राविशारदः–तादृशसिद्धान्तावबोधनापटुः। अहम्–मल्लक्षणो जनः। च–पुनः। क्व–कुत्र। मादृशः सर्वथा तदीय सिद्धान्तपर्य्यालोचनाक्षम इति भावः।

तथापि तत्र प्रवृत्तिनिदानमर्हन्मतानुरागमाह–श्रमो ममेत्यादिना—

(कल्पलता)

श्रमो ममोचितो भावी, तथाप्येष शुभायतिः ।
अर्हन्मतानुरागेण, मेघेनेव कृपिस्थितिः ॥३॥

अन्वयः—तथापि, मेघेन, कृपिस्थितिः, इव, अर्हन्मतानुरागेण, उचितः, मम, एषः, श्रमः, शुभायतिः, भावी ॥

(कल्पलतावतारिका)

तथापि–पूर्वकथितप्रकारेण तदीयसिद्धान्तपर्य्यालोचन-

(अनुष्टुब्वृत्तम्)

प्रणम्य परमात्मानं, वक्ष्यामि [illegible] ।
सर्वेषामल्पबुद्धीनां, [illegible] ॥१॥

[illegible]

[illegible]

पदार्थः—परमात्मानम्—परमेश्वरम् । प्रणम्य—नमस्कृत्य [illegible] । अल्प-
बुद्धीनाम्—तुच्छ[illegible] । [illegible]
[illegible] । सर्वेषाम्—[illegible]

शास्त्रीयज्ञानं विना केवलं पशुवदाहारादिक्रियाणां मध्ये ज्ञानमिति-यावत् । इत्यनेन "न कामाभिलाषेण शास्त्रं ज्ञानमिति लोके बीज-मवगन्तव्यम् । हितकाम्यया–शुभकामनया । शास्त्रवार्तासमुच्चयम्–पूर्वदर्शितस्वरूपं ग्रन्थात्मकं शास्त्रम् । वक्ष्यामि–अभिधास्ये ॥

अथैतावता ("निर्विघ्नपरिसमाप्तये मङ्गलमाचरेत्" इत्ये-तावता) निर्विघ्नग्रन्थपरिसमाप्तिं प्रति मङ्गलस्य कारणत्वमुक्तं भवति परं तत्र सङ्गच्छते समाप्तिं प्रति मङ्गलस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां व्यभिचारात् तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् तदभावे तदभावः" इत्यन्वयव्यति-रेकस्वरूपम् तयोरेव कार्य्यकारणभावग्राहकत्वम् दण्डादिसत्त्वे घट-सत्त्वस्य तदभावे तदभावस्य दर्शनात् घटदण्डाद्योः कार्य्यकारणभावः सम्पद्यते, घटे कार्य्यता दण्डादौ च कारणता स्वीक्रियते, मङ्गलसमा-प्त्योः परस्परमन्वयव्येतिरेकौ न स्तो यतो मङ्गलसत्त्वेऽपि ग्रन्थ-समाप्त्यभावः किरणावल्यादौ नास्तिकग्रन्थे च मङ्गलविरहेऽपि समाप्तिर्दृश्यते, अतो हेतोरन्वयव्यतिरेकव्यभिचारान्मङ्गलं न समाप्तिमात्रे कारणम् ॥

न च स्व (मङ्गल) समसंख्यकविघ्नस्थलीयसमाप्तित्वावच्छिन्नं प्रति स्वस्य कारणतोच्यते, कादम्बर्य्यादौ मङ्गलाधिकविघ्नसत्त्वान्न समाप्तिः किरणावल्यादौ च जन्मान्तरीयमङ्गलादेव समाप्तिः स्वी-करिष्यते तथा च नान्वयव्यतिरेकाभ्यां व्यभिचार इति वाच्यम् । एवं-विधकार्य्यकारणभावस्वीकारे समसंख्यकत्वाभावात् विघ्नाधिक-संख्यमङ्गलस्थलेऽपि समाप्त्यभावप्रसङ्गात् । न च स्वानधिक–न्यून-संख्यविघ्नस्थलीयसमाप्तिं प्रति मङ्गलस्य कारणता स्वीकारान्न तादृशस्थले समाप्तिविरहप्रसङ्ग, इति वाच्यम् । यत्र दश विघ्नाः पञ्च

च प्रायश्चित्तेन नाशिता, यत्र च मङ्गलानि तत्र समाप्त्यभाव-प्रसङ्गात् । न च प्रायश्चित्ताद्यनाश्यत्वानधिकसंख्यविघ्नस्थली-यत्वं समाप्तौ निवेश्यते तथा च नोक्त दोष इति वाच्यम् । बलवतो विघ्नस्य बहुभिरपि मङ्गलैरनाशात्, बलवता मङ्गलेन बहूनामपि विघ्नानां नाशाच्च । तथा च मङ्गलं व्यर्थमेव, न चाऽऽवश्यकत्वाद् विघ्नध्वंस एव मङ्गलफलमस्तु समाप्तिस्तु कारीरीतोऽवग्रहनिवृत्तौ वृष्टिरिव प्रतिबन्धकनिवृत्तौ स्वकारणबुद्धिप्रतिभादिकारणकलापा-देव भविष्यतीति वाच्यम्, मङ्गलं विनापि विघ्नध्वंस प्रायश्चित्तादितो भावेन व्यभिचारात् "विघ्नो मा भूत्" इति कामनया प्रवृत्तेर्विघ्न-प्रागभाव एव फलमित्यादि नो मनोरमं वचनम् प्रागभावस्यासाध्य-त्वात्, स्वत आगन्तुकस्य समयविशेषस्य सम्बन्धरूपस्य तत्परि-पालनस्यापि मङ्गलासाध्यत्वात्, तस्मात् मङ्गलं निष्फलमिति चेत्—

अत्रोपाध्यायाः— विघ्नध्वंस एव मङ्गलं हेतुः । अर्थात् विघ्नध्वंसं प्रत्येव मङ्गलस्य कारणता स्वीकार्या । न च मङ्गलं विनापि विघ्नध्वंसस्य प्रायश्चित्तादितो भावेन पूर्वोक्तव्यभिचार इति वाच्यम्, प्रायश्चित्तादीनामपि मङ्गलत्वात्, प्रारिप्सितप्रतिबन्धक-दुरितनिवृत्त्यसाधारणकारणं मङ्गलमिति तल्लक्षणं परैरुच्यते, तत्र चास्माभिर्लाघवात् "प्रारिप्सितप्रतिबन्धक" इति दुरितविशेषणं त्य-ज्यते, "स्वाध्यायादेरपि मङ्गलत्वाविरोधात्" इत्याकारग्रन्थोऽत्र प्रमाणम् । तादृशविशेषणत्यागे लाघवञ्च कार्य्यकारणभावेऽन्यत्रहितो-त्तरत्वनिवेशाभावमूलकमत्रगमनीयम्, अन्यथा प्रायश्चित्तादीनां मङ्ग-लत्वास्वीकारे यत्र केवलं मङ्गलेन विघ्नध्वंसस्तत्र प्रायश्चित्तादि-कारणविरहेऽपि कार्य्यसत्त्वात् "तदभावे तदभावः" इति व्यतिरेकस्य

निवृत्त्यर्थमन्नपानादिप्रवृत्तिवद् दुःख—निवृत्त्यर्थमेव सिद्धौ प्रेक्षावतां प्रवृत्तिः सेत्स्यतीति प्रेक्षावत्प्रवृत्तेरन्यथोपपत्तौ न तदनुपपत्तिस्तत्र मानमिति वाच्यम्, अन्नपानादावपि सुखार्थमेव प्रवृत्तेः। अन्यथाऽस्वादुपरित्यागस्वादूपादानानुपपत्तेः। पर्यालोचनया वस्तुतः सर्वत्र सुखार्थमेव प्रवृत्तिरिति। न च बहुदुःखग्रस्तानां मरणादावपि प्रवृत्तिदर्शनात् कथं सुखार्थमेव प्रवृत्तिरिति वाच्यम्। विवेकिप्रवृत्तेरेवाऽत्राधिकृतत्वात्। अतः साधूच्यते—

दुःखाभावोऽपि नावेद्यः, पुरुषार्थतयेष्यते।
नहि मूर्च्छाद्यवस्थार्थं, प्रवृत्तो दृश्यते सुधीः ॥ इति

"दुःखं मे माभूत्" इत्युद्दिश्य प्रवृत्तेर्दुःखाभाव एव पुरुषार्थः। तज्ज्ञानं त्वन्यथासिद्धमिति चेत्-सत्यम्; अवेद्यस्य तस्य (क्षुदादेः) ज्ञानादिहानिरूपाऽनिष्टानुविद्धतया प्रवृत्त्यनिर्वाहकत्वात्।

अतएव— सुखमात्यन्तिकं यत्र, बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
तं वै मोक्षं विजानीयाद्, दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥

इत्यादि वचनमप्युपपद्यते, इति संक्षेपः ॥

वक्तव्ये शास्त्रवार्तासमुच्चये पूर्वं सर्वविप्रतिपत्त्यविषयां शास्त्रवार्तामाह—

(शास्त्रवार्ता०)

दुःखं पापात् सुखं धर्मात्, सर्वशास्त्रेषु संस्थितिः।
न कर्तव्यमतः पापं, कर्तव्यो धर्मसञ्चयः ॥३॥

अन्वयः—पापात् दुःखं, धर्मात् सुखं (इयं) संस्थितिः सर्वशास्त्रेषु, अतः पापं न कर्तव्यं, धर्मसञ्चयः कर्तव्यः।

पापात्--अधर्मात्, दुःखं--भवति। धर्मात् सुखं-भवति। इयं सर्वशास्त्रेषु, सं--समीचीना-अविप्रतिपत्तिविषया, स्थितिः-मर्यादा। अतो--दुःखहेतुतया, पापमशुभकर्महेतु, न कर्तव्यम्, सुखहेतुतया संचितोऽङ्गवैकल्यादिविरहितो धर्मः धर्मसञ्चयः कर्तव्यः ॥३॥

शुभाऽशुभहेतूनाह—

(शास्त्रवार्ता०)

हिंसाऽनृतादयः पञ्च, तत्त्वाश्रद्धानमेव च।
क्रोधादयश्च चत्वार, इति पापस्य हेतवः ॥४॥

अन्वयः—हिंसानृतादयः पञ्च, तत्त्वाश्रद्धानम् एव च, चत्वारः क्रोधादयश्च, इति पापस्य हेतवः।

हिंसानृतादयः पञ्च— हिंसाऽनृताऽदत्तादानाऽब्रह्मपरिग्रह-पञ्चकम्। तत्र प्रमादयोगेन प्राणव्यपरोपणं **हिंसा**। धर्मविरुद्धं वचन-**मनृतम्**। धर्मविरोधेन स्वामिजीवाद्यननुज्ञातपरकीयद्रव्यग्रहणम-**दत्तादानम्**। स्त्रीपुंसव्यतिकर (संसर्ग) लक्षणमब्रह्म। सर्वभावेषु मूर्च्छालक्षणः **परिग्रहः**। "हिंसादयः" इत्येतावतैव आदिशब्दानृत-ग्रहणसम्भवात् पुनरनृतग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थमवसेयम्। कथिताः पञ्चाऽविरतिरूपा उच्यन्ते। तत्त्वस्य यथास्थितवस्तुनोऽश्रद्धानं यस्मा-दिति बहुव्रीह्याश्रयणात् **तत्त्वाऽश्रद्धानं** मिथ्यात्वम्। एवकार प्रसि-द्ध्यर्थः। च-पुनरर्थः। क्रोधमानमायालोभात्मकाश्चत्वारः **क्रोधा-दयश्च**। इति-एतावन्तः, पापस्याशुभकर्मणो, **हेतवः**-कारणानि कथितानि ॥४॥

धर्मस्य हेतून् व्यतिरेकेण व्यनक्ति—

(शास्त्रवार्ता०)

विपरीतास्तु धर्मस्य, एत एवोदिता बुधैः ।
एतेषु सततं यत्नः, सम्यक् कार्य्यः सुखैषिणा ॥५॥

अन्वयः—तु विपरीताः एते एव बुधैः धर्मस्य (हेतवः) उदिताः, सततं सुखैषिणा एतेषु सम्यक् यत्नः कार्य्यः ।

तु—विशेषणे । विपरीताः—अहिंसा-सत्या-ऽस्तेय-ब्रह्मा-ऽपरिग्रह-सम्यग्दर्शन-क्षान्ति-मार्दवा-ऽऽर्जवाऽनीहारूपाः, एत एव बुधैरर्हद्वचनानुसारिगीतार्थैः, धर्मस्य गुणाः शुभाशयलक्षणस्य हेतव उदिताः प्रतिपादिताः, अत एतेषु धर्मकारणेषु सततं—निरन्तरं सुखैषिणा— कल्याणेच्छुना सम्यक्—विधिना यत्नः कार्य्यः सुखोपाये प्रवृत्तेरेव सुखोत्पत्तेः । स्वभावतः सुखदुःखेच्छाद्वेषवतामपि प्राणिनां सुखोपाये धर्मेऽनिच्छा दुःखोपाये चाधर्म एवेच्छा खलु मोहमहाराजनिदेशविलसितम् । तदुक्तम्—

धर्मस्य फलमिच्छन्ति, धर्मं नेच्छन्ति मानवाः ।
फलं नेच्छन्ति पापस्य, पापं कुर्वन्ति सादराः ॥

उक्तहेतेषु प्रवृत्त्या च, अहिंसादिनाऽविरतेः, सम्यग्दर्शनेन च मिथ्यात्वस्य, क्षमादिना च क्रोधादिनां निवृत्तेस्तन्मूलकदुःखविरहात् अप्रतिहतः सुखावकाशः । "अहिंसया क्षमया क्रोधस्य, ब्रह्मचर्येण वस्तुविचारेण कामस्य, अस्तेयाऽपरिग्रहरूपेण सन्तोषेण लोभस्य, सत्येन यथार्थज्ञानरूपेण विवेकेन मोहस्य, तन्मूलानां च सर्वेषां निवृत्तिः ।" इति तु पातञ्जलमतानुसारिणः ।

तत्रेदं विभावनीयम्—अहिंसादिना मूलगुणपालिशौचादिनिवृत्तावपि संयमनादिरूपशोभानिवृत्तिः प्रमादोत्तरगुणभावाभावादेव ॥५॥

॥ एतन्मूलश्लोकपञ्चकं प्रसङ्गादावश्यकत्वाच्चोद्धृतमत्र संयम् ॥

अथ चार्वाकपूर्वपक्षः—

(शास्त्रवार्ता०)

पृथिव्यादिमहाभूत-मात्रकार्य्यमिदं जगत् ।
न चात्मा, दृष्टसद्भावं, मन्यन्ते भूतवादिनः ॥३०॥

अन्वयः—इदं जगत् पृथिव्यादि-महाभूतमात्रकार्य्यं न आत्मा न भूतवादिनः दृष्टसद्भावं मन्यन्ते ।

इदं प्रत्यक्षोपलभ्यमानं जगत् चराचरं विश्वम् पृथिव्यादिमहाभूतमात्रकार्य्यम् पृथिवी आदिर्येषां तानि पृथिव्यादीनि पृथिवीजलतेजोवायुलक्षणानि यानि चत्वारि महाभूतानि, पृथिव्यादिमहाभूतानि, तेषामेव तन्मात्रम् तस्य कार्य्यन्तथा, एवकारार्थकमात्रपदेनाऽऽकाशादिव्यवच्छेदः । ननु जगदन्तर्गतस्याऽऽत्मनो न पृथिव्यादिमहाभूतमात्रकार्य्यत्वम्, तथा च यस्य कस्यचिदेकस्यापि तन्मात्रकार्य्यत्वाभावे प्रतिज्ञाभङ्ग इति चेन् सत्यम्-"चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः" इतिवचनात् शरीरातिरिक्तस्यात्मनः प्रत्ययालम्बनस्यासत्त्वाभ्युपगमात्, भूतवादिभिः प्रत्यक्षवस्तुन एव पारमार्थिकत्वस्य स्वीकारात्, तनाभावात्, "अदृष्टस्य" तत्त्वानभ्युपगमाच्च ।

प्रत्यक्षातिरिक्तस्य वस्तुनः पारमार्थिकत्वाभ्युपगमेऽनुमानमस्ति प्रमाणमिति चेन्न तैरनुमानस्य प्रामाण्यानङ्गीकारात्, व्यभिचारिसाधारण्येन तस्य (अनुमानस्य) अप्रमाणत्वात्, पर्वतादौ धूमादिदर्शनेन

[illegible]

[illegible] , ग-
[illegible] , शब्दस्य
[illegible] । [illegible]प्रतिपादक-
शब्दप्रयोगो दुर्घटः स्यात् , यदि [illegible] निष्प्रयोजनः स्या-
दिति चेत्—न, परं प्रति दूषणपर्यनुयोगात्, परस्य तदनुसरमात्रेण
निग्रहे च तत्साफल्यात् । अत एव "सर्वत्र पर्यनुयोगपराणि सूत्राणि
बृहस्पतेः" इत्यभिहितम् । ततोऽदृष्टे वस्तुनि मानाभावान्नास्त्यात्मेति
लोकायतिकप्रवादः ।

आत्मवादिनां मतमुपन्यस्यति 'अचेतनानीति'—

(शास्त्रवार्ता०)

अचेतनानि भूतानि, न तद्धर्मो न तत्फलम् ।
चेतनास्ति च यस्येयं, स एवात्मेति चापरे ॥२१॥

अन्वयः—अपरे च भूतानि अचेतनानि, चेतना तद्धर्मः न, तत्फलं न, इयं च यस्य स एव आत्मा इति (मन्यन्ते) ।

अपरे च—आत्मवादिनः पुनः, **भूतानि**—पृथिव्यादीनि, **अचेतनानि** चैतन्याभाववत्त्वेन प्रमितानि, अतश्चेतना-**तद्धर्मो न**, भूतस्वभावभूता न, अत एव च **तत्फलं न**—भूतोपादानकारणजन्या न, मृदो घटस्येव तत्स्वभावस्यैव तदुपादेयत्वात् अस्ति च चेतना, प्रति प्राण्यनुभवसिद्धत्वात्, अतो **यस्येयं** चेतना स्वभावभूता, फलभूता च, **स एवाऽऽत्मा**, परिशेषात् । **इति**—मन्यन्ते इति शेषः ।

न चैकत्र भेदाभेदोभयाविरोधसम्पादनार्थं कालोऽवश्यमाश्रयणीयः, कथमन्यथा पक्वतादशायां घटादौ "अयं न श्यामः" इत्यादि धीः ? कालस्वीकारे च कालभेदेनैकत्रोभयसमावेशः सम्भवतीति। "इदानीं घटः" इत्यादि-प्रतीतौ सम्बन्धघटकतया परत्वादिलिङ्गेन वा कालसिद्धिस्तथा च लोकसिद्धत्वात् काल एव स्वीक्रियताम्, लोकासिद्धत्वादात्मस्वीकारो वृथैवेति वाच्यम्। जातिस्मरणस्य भवान्तरानुभूतार्थविषयस्य मतिज्ञानविशेषस्य लोकेन संश्रयादात्मनोऽपि लोकसिद्धत्वात्। तथाहि—न हि भवान्तरानुभूतार्थस्मरणमन्वय्यात्मद्रव्यं विनोपपद्यते, शरीरस्य भवान्तराननुयायित्वात्। न चैवं भवान्तरादागमनाऽविशेषेऽपि केषाञ्चिदेव जातिस्मरणं न सर्वेषामिति विशेषः कथमिति वाच्यम्, सर्वेषामभिमतव्यतिरिक्तानां जातिस्मरणाभावस्य नानाविधकर्मविपाकतः सिद्धत्वात्। तथा चोक्तं हरिभद्रसूरिवर्यैः— "लोकेऽपि नैकतः स्थानादागतानां तथेक्ष्यते। अविशेषेण सर्वेषामनुभूतार्थसंस्मृतिः"॥ इति॥

एवञ्च लोकसिद्धत्वाऽविशेषेऽपि सकलप्रयोजनहेतोरनन्यसाधारणगुणस्याऽऽत्मनोऽनङ्गीकारस्तत्तद्वस्तु परिणामान्यथासिद्धस्य कालस्य चाङ्गीकार इति पुरः परिस्फुरतोर्मणिपाषाणयोर्मध्ये मणित्याग पाषाणग्रहणवदतिशोचनीयं, विलसितं देवानांप्रियस्य लोकायतिकस्येति।

उपाध्यायास्तु—

वस्तुतः स्मरणान्यथाऽनुपपत्त्याऽपि लोकसिद्ध एवाऽऽत्मा, शरीरस्य चैतन्ये बाल्येऽनुभूतस्य तारुण्येऽस्मरणप्रसंगात्, चैत्रेणानुभूतस्येव मैत्रेण; बालयुवशरीरयोर्भेदात्, परिणामभेदे द्रव्यभेदा-

[illegible]

अत्र नव्यनास्तिकाः—अवच्छेदकतया ज्ञानादिकं प्रति तादात्म्येन कल्प्यकारणतावच्छेदक शरीरस्यैव समवायेन ज्ञानादिकं प्रति हेतुत्वकल्पनमुचितम्, न चैवमात्मत्वं जातिर्न सिद्ध्येत पृथिवीत्वादिना साङ्कर्यात् "व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथानवस्थितिः। रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधकसंग्रहः ॥" इत्यभियुक्तोक्त्या परस्परसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपस्य साङ्कर्यस्य भूतत्वमूर्तत्वयोरिव प्रकृतेऽपि पृथिवीत्वादिना साङ्कर्यादात्मत्वस्य जातित्वबाधात् इति वाच्यम्, उपाधिसाङ्कर्यस्येव जातिसाङ्कर्यस्याप्यदोषात्। न च तथापि पृथिव्यादिभूतचतुष्कप्रकृतित्वेन शरीरमतिरिच्यते, स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन [illegible]द्यभावस्य गन्धादिकप्रतिबन्धकत्वेन तस्य भूतचतुष्कप्रकृतित्वा-

अन्वयः—मृतदेहे न सर्वथा, देहधर्मादिभावेन, चैतन्यम् उपलभ्येत अन्यथा न तद् (तद्-) धर्मादि न ॥

मृतदेहे च सर्वथा–सर्वप्रकारैः, यथा सजीवशरीरे सर्वं प्रका चैतन्योपलब्धिस्तथेति भावः। देहधर्मादिभावेन–देहधर्मत्व–देहकार्य त्वाभ्याम्। चैतन्यमुपलभ्येत–देहत्व-देहरूपादिवत्। अन्यथा-योग्या पलम्भे, न–तदभाव एव स्यात्, तथा च तच्चैतन्यं, तद्धर्मादि न–तद्ध- र्मभूतं तत्कार्य्यभूतं च न, तद्भावेऽपि (देहभावेऽपि) तदभावात् (चैत- न्याभावात्), घटत्वघटरूपादिवत्। विशेषजिज्ञासुभिः शास्त्रवार्तास- मुच्चय आलोकनीयः ॥

"योऽहं बाल्येऽन्वभूवम् सोऽहं स्मरामि" इत्यादिप्रतीत्या शरीरातिरिक्तस्य सत्तया प्रतीतस्याऽऽत्मनः सिद्धिर्भवति, सतश्चाभा- वाप्रतीतेः। तथाहि "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।" इत्यादिनाऽसतो भावस्य सतश्चाभावस्य निषेधप्रतिपादनात्। एवञ्चाभावः पारमार्थिकत्वं न प्रतिपद्यते शशश‍ृङ्गे भावत्वेनाऽपरिच्छेदात् एवमेव भावस्तुच्छस्वभावं नाप्नोति। नन्वभावोऽपि भावरूपतामापद्यत एव भावरूपस्य दीपस्या- ऽऽलोकाभावात्मकान्धकारस्वरूपताप्रतिपत्तेरितिचेन्न, दीपसम्बन्धिनो- ऽन्धकारपरिणामस्य सर्वथाऽभावरूपत्वाभावात्। भास्वरपरिणामत्या- गेऽपि द्रव्यत्वापरित्यागात्। नैयायिकैः स्वीकृतमन्धकारस्य तेजोऽभा- वरूपत्वमपि न। "तमो नीलम्" इति प्रतीतेः सार्वजनीनत्वेन तमो द्रव्यं रूपवत्त्वात् घटवत्, इत्यनुमानेन तत्र द्रव्यत्वसाधनात्। तथा चोपाध्यायाः—

(कल्पलता)

तेजसोऽतिविनिवृत्तिरूपता, स्वीकृता तमसि या कणाशिना ।
द्रव्यतां वयममी समीक्षिण-स्तत्र पत्रमवलम्ब्य चक्ष्महे ॥५॥

अन्वयः—कणाशिना, या, तमसि, तेजसः, अतिविनिवृत्तिरूपता, स्वीकृता, समीक्षिणः, अमी, वयम्, पत्रम्, अवलम्ब्य, तत्र, द्रव्यताम्, चक्ष्महे ।

(कल्पलतावतारिका)

कणाशिना-कणादेन मुनिना। या तमसि-अन्धकारे। तेजसः-वह्नेः। अतिविनिवृत्तिरूपता—अत्यन्ताभावस्वरूपता । स्वीकृता—अङ्गीकृता। समीक्षिणः-समीचीनतया पर्यवेक्षकाः। अमी-वयम् आर्हताः। पत्रम् अवलम्ब्य-पत्रावलम्बनं कृत्वा । तत्र- तमसि। द्रव्यताम्—द्रव्यस्वभाववाम् । चक्ष्महे—ब्रूमः। अत्र पत्रमवलम्ब्येति विशेषणं वक्तुरनुपमप्रतिभाभिव्यञ्जनात् काव्यस्य ध्वनित्वं प्रयोजति । तत्र पत्रेत्येतदंशेच्छेकानुप्रासोऽलङ्कारः ।

अथ "तमो नीलम्" इति प्रतीत्या तमसो नीलरूपवत्त्वे तस्य पृथिवीत्वापत्तिः नीलत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेन हेतुत्वादिति चेन्न, आर्हतानां स्वभावविशेषस्यैव विशिष्टनीलनियामकत्वात्, कणादमतानुयायिनोऽपि अवयवनीलादिनैवाऽवयविनि नीलाद्युत्पत्तौ पृथिवीत्वेन तत्समवायिकारणत्वाभावात् । न च तमसो द्रव्यत्वे आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वं न स्यात्, द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रत्यालोकसंयोगत्वेन हेतुत्वात्, इति वाच्यम् । आलोकं विनापि घूकादीनां द्रव्यचाक्षुषोदयाद् व्यभिचारात् । किञ्चैवं तमसोऽभावत्वे तेजोज्ञानं विना ज्ञानं न स्यात्, अभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञानस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां हेतु-

त्वावधारणात् । आलोकं जानतामेव तमः प्रत्यक्षस्वीकारादिष्टापत्तिः कर्तुमशक्या,तेजसोऽप्रतिसन्धानेऽपि तमोऽनुभवस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्। अधिकं कल्पलतायामालोकनीयम् । तथा चोपाध्यायाः—

(कल्पलता)

इमां गिरं समाकर्ण्य, सकर्णा जाङ्गुलीमिव ।
उद्वमन्तु सुखं ध्वान्ते-ऽत्राभावत्वभ्रमं विषम् ॥६॥
तस्मान्न जायते किञ्चि-देकान्ताद् न च नश्यति ।
प्रसिद्धं निखिलार्थानां, त्रैलक्षण्यं हि लक्षणम् ॥७॥

अन्वयः—सकर्णाः, जाङ्गुलीमिव, इमाम्, गिरम्, समाकर्ण्य, अत्र, ध्वान्ते, अभावत्वभ्रमम्, विषम्, सुखम्, उद्वमन्तु, । तस्मात्, किञ्चित्, एकान्तात्, न च, जायते, न च, नश्यति, हि, निखिलार्थानाम्, त्रैलक्षण्यम्, प्रसिद्धम् ।

(कल्पलतावतारिका)

सकर्णाः—विद्वांसः । जाङ्गुलीम्— विषापनयनविद्यामिव । इमाम्—प्रत्यक्षमनुभूयमानाम् । गिरम्—वाणीम् । समाकर्ण्य—श्रुत्वा । अत्र—सभायाम् । ध्वान्ते—अन्धकारे, तद्विषय इत्यर्थः । अभावत्व-भ्रमम्—अभावत्वभ्रान्तिरूपम् । विषम्-गरलम् । सुखं—यथा स्यात्तथा । उद्वमन्तु—प्रतिकर्षन्तु । रूपकोपमयोः संसृष्टिरत्रालङ्कारः । तस्मात्—"नाभावो भावतां याति" इत्यस्य सिद्धत्वात् । किञ्चित्—किमपि वस्तु। एकान्तात्—एकान्ततः । न—नहि । जायते—उत्पद्यते । च—पुनः । न—नहि । नश्यति—विनश्यति । हि—यस्मात् । निखिलार्थानाम्—

[illegible] । [illegible]म्-[illegible] । [illegible]म्-[illegible] । प्रविष्टम्-[illegible] ।

[illegible]

दोषापगमः—

([illegible])

यथा कथायां प्रविशन् परस्य, नैवापिकः [illegible] मनीषाम् ।
तथा यथार्थाऽऽगमवद्गुरूक्ति-र्दोष्याणि नान्यापि किमेव शिक्षाम् ॥८॥

अन्वयः—यथा, [illegible] ।

([illegible])

यथा-येन प्रकारेण । परस्य-अन्यस्य वादिनः सह न्यायादिन इत्यर्थः । कथायाम्-चर्चायाम् । प्रविशन्-प्रवेशं [illegible] । नैवा-पिकः-[illegible] । मनीषाम्-[illegible], [illegible] । [illegible] । [illegible]न्ति-[illegible] । तथा-तेन प्रकारेण ।

यथार्थागमवद्धबुद्धिः-यथार्थाऽऽर्हतागमाभ्यासपरिपक्वमतिः। एषः-प्रत्यक्षदृश्योऽहम्। अस्य-नैयायिकस्यापि। शिक्षाम्-दण्डम्। न-नहि। दास्यामि-करिष्यामि, अपि तु करिष्याम्येवेति यावत्। अनुप्रासोऽत्रालङ्कारः। चार्वाकादीनुपहसन्त्युपाध्यायाः—

(कल्पलता)

बोधः स्वार्थावबोधक्षम इह निहताऽशेपदोषेण दृष्ट-
स्तस्मादस्माकमन्तर्विरचयति चमत्कारसारं विलासम्।
येषामेषाऽपि वाणी मनसि न रमते स्वाऽऽग्रहग्रस्ततत्त्वा-
ऽऽलोका लोकास्त एते प्रकृतिशठधियो हन्त हन्ताऽनुकम्प्याः ॥१॥

अन्वयः—तस्मात्, इह, निहिताऽशेपदोषेण, दृष्टः, स्वार्थावबोधक्षमः, बोधः, अस्माकम्, अन्तः, चमत्कारसारम्, विलासम्, रचयति, येषाम्, मनसि, एषाऽपि, वाणी, न, रमते, स्वाग्रहग्रस्ततत्त्वालोकाः प्रकृतिशठधियः, ते, एते, लोकाः, अनुकम्प्या, हन्त! हन्त!

(कल्पलतावतारिका)

तस्मात्-पूर्वोक्तहेतोः। इह-लोके। निहिताशेषदोषेण-विनाशितसमस्तदोषजातेन, वीतरागादिनेति भावः। दृष्टः-अनुव्यवसितः। अनुव्यवसायविषयीकृत इति यावत्। स्वार्थावबोधक्षमः-स्वविषयावबोधनसमर्थः। "अर्थो विषयार्थनयोर्धनकारणवस्तुषु। अभिधेये च शब्दानां निवृत्तौ च प्रयोजने" इति मेदिनी। बोधः-ज्ञानम्। अस्माकम्-आर्हतानाम्। अन्तः-अन्तःकरणमध्ये। चमत्कारसारम्-चमत्कार आनन्दविशेषः सारः श्रेष्ठो यस्मिन् तत्तथा। विलासम्-विभ्रमविशे-

पम् । विरचयति–समुत्पादयति । येषाम्–चार्वाकादीनाम् । मनसि–हृदये । एषा–इयम् । अपि–सम्भावनायाम् । वाणी–वीतरागवचनम् । न–नहि । रमते–आनन्दं लभते । स्वाऽऽग्रहग्रस्ततत्त्वालोकाः–स्वाऽऽग्रहैर्निजाभिनिवेशविशेषैर्ग्रस्तो दूषितस्तत्त्वस्य याथार्थ्यस्य आलोकः प्रकाशो यैस्ते तथा। प्रकृतिशठधियः-स्वभावतो दुष्टबुद्धयः । ते-तादृशदुष्टबुद्धित्वेन प्रसिद्धाः । एते–इमे । लोकाः–चार्वाकादयो जनाः। हन्त हन्त–अव्ययद्वयमत्यन्तखेदं सूचयति । अनुकम्प्याः–दयनीयाः। तेषां कृतेऽन्या कापि गतिर्नास्तीति भावः ।

एवं समीचीनयुक्तितति भिरात्मानं प्रसाध्य चार्वाकानुपहसति, वाचकप्रवरः आत्मसिद्धेरिति –

(कल्पलता)

आत्मसिद्धेः परं शोका-ल्लोकाः ! लोकायताननम् ।
समालोकामहे म्लानं, तत्र नो कारणं वयम् ॥१०॥

अन्वयः—लोकाः ! परम् , आत्मसिद्धेः शोकाद् , लोकायताननं, म्लानं, समालोकामहे, तत्र, वयं, कारणं, नो ।

(कल्पलतावतारिका)

लोकाः–अयि भव्यजनाः ! परम्–केवलम् । आत्मसिद्धेः–युक्तिततिकरणकदेहातिरिक्ताऽऽत्मसिद्धितः । पञ्चम्यर्थो जन्यत्वम्, तथा च आत्मसिद्धिजनितादित्यर्थः । शोकात्–हार्दिकशुचः । लोकायताननम्–चार्वाकवदनम् । म्लानम्–वैलक्ष्यमलिनम् । समालोकामहे–पश्यामः। तत्र–चार्वाकवदनम्लानतायाम् । वयम्–आर्हताः । कारणम्-

नास्तीति चेत्,— न [illegible]
[illegible]
[illegible] न [illegible]

न च नरादिशरीरं [illegible] भोग[illegible] शरीर-वैचित्र्यात्, शरीरसंयोगस्याकाशा[illegible] सं-योग, इति वाच्यम्,— शरीरसंयोगस्याकाशादावपि सत्त्वेन तत्रापि भोगापत्तेः, उपष्टम्भकसंयोगेन शरीरस्य भोगनियामकत्वे तु तादृश-संयोगप्रयोजकतयैवादृष्टसिद्धिः ।

न चैवमपि गङ्गाद्विपरिणतभूतानां विचित्रभोगहेतुस्वभाव-त्वात्, फलभेदोपपत्तौ न तदर्थं हेत्वन्तरस्यावश्यकतेति वाच्यम् । "भूतात्मक एवाऽऽत्मा न" इत्येतस्य पूर्वप्रबन्धे व्यवस्थापितत्वात् ।

अथैवमपि भोगनिर्वाहकस्याऽऽत्मधर्मस्यैवाऽदृष्टस्य कल्पनात् सर्वमिदमसङ्गतम् । "संभोगो निर्विशेषाणां न भूतैः संस्कृतैरपि" इति स्मरणात् । किञ्च—चित्रस्वभावमप्यदृष्टस्याऽनुपपन्नम्,— तद्वैजात्ये मानाभावात्, तत्सत्त्वे कर्मणां विशिष्याऽदृष्टहेतुत्वे गौरवाच्च । न च कीर्तननाश्यतावच्छेदकतया तत्सिद्धिः ।

तत्र दृष्टत्वस्य स्वाश्रयजन्यताविशेषसम्बन्धेनाऽश्वमेधत्वादि-घटितस्य वा तथात्वात् । "अन्यथा मयाऽश्वमेधवाजपेयौ कृतौ", "मया वाजपेयज्योतिष्टोमौ कृतौ" इत्यादि कीर्तननाश्यतावच्छेदकजातिसिद्धौ साङ्कर्य्यस्यापि सम्भवात् । अस्तु वा तत्कीर्तनाभावविशिष्टतत्तत्कर्मत्वेन हेतुत्वम् । अतो न समूहालम्बनहरिगङ्गास्मरणजन्याऽपूर्वस्य गङ्गास्मृति-कीर्तनादनाशे हरिस्मृतेरपि फलानापत्तिः, तज्जन्यापूर्वयोरेकस्य नाशे-ऽप्यपरस्य सत्त्वे गङ्गास्मृतेरपि वा फलापत्तिरिति चेदत्रोच्यते—

रपि कर्माधीनत्वेन स्वभावत ऊर्ध्वज्वलनादेरनियमादिनापि तादृशप्रसङ्गात्।
न चेश्वराधीनत्वेन, तस्य (ईश्वरस्य) नित्यत्वादिति किमतिविस्तरेण ?

इति स्वपक्षसिद्धया समभिमताऽभिनन्दनीयानन्दो महोपाध्यायश्चार्वाकानुपहसति, मरीचिभिरिति—

(कल्पलता)

मरीचिरुच्चैः समुदञ्चतीयं, जैनोक्तभानोर्यददृष्टसिद्धिः ।
निमील्य नेत्रे तदसौ वराकश्चार्वाकघूकः श्रयतां दिगन्तम् ॥११॥

अन्वयः—यत्, जैनोक्तभानोः, मरीचिः, इयम्, अदृष्टसिद्धिः, उच्चैः, समुदञ्चति, तत्, वराकः, असौ, चार्वाकघूकः, नेत्रे, निमील्य, दिगन्तम्, श्रयताम् ।

(कल्पलतावतारिका)

यत्-यस्माद्धेतोः। **जैनोक्तभानोः**—जिनस्य सर्वज्ञस्य ऋषभादेरिदं जैनम्, तच्च तदुक्तं तदुपदिष्टम् जैनोक्तम्, तदेव भानुः जैनोक्तभानुस्तस्य तथा। **मरीचिः**—किरणरूपा। **इयम्**-एषा। **अदृष्टसिद्धिः**—वादिविप्रतिपत्तिपिशाचीकवलितस्यादृष्टस्य कर्मापरपर्यायस्य सिद्धिर्निष्पत्तिस्तथा। **उच्चैः**—सातिशयम्। **समुदञ्चति**—समुल्लसति। **तत्**—तस्माद्धेतोः। **वराकः**—मूर्खः। **असौ**—एषः। **चार्वाकघूकः**—चार्वाक एव घूक उलूकः चार्वाकघूकः, सूर्यकिरणमसहमान उलूक इव जैनोक्ततेजोऽसहमानश्चार्वाक इति भावः। **नेत्रे**-नयने। **निमील्य**—संकोच्य। **दिगन्तम्**—दिक्प्रान्तभागम्। **श्रयताम्**—आश्रयतु। रूपकमलङ्कारः। सादृश्यातिशयमहिम्नोपमानोपमेययोरभेदस्यैव रूपकालङ्कारात्। अदृष्टे दर्शनान्तरसम्मतिं दर्शयति,—अदृष्टमिति—

(शास्त्रवार्ता०)

अदृष्टं कर्मसंस्कारः, पुण्यापुण्ये शुभाशुभे ।
धर्माधर्मौ तथा पाशः, पर्यायास्तस्य कीर्तिताः॥१०७॥

अन्वयः—अदृष्टम्, कर्म, संस्कारः, पुण्यापुण्ये, शुभाशुभे, धर्माधर्मौ, तथा पाशः, तस्य, पर्यायाः, कीर्तिताः ।

"अदृष्टम्" इति वैशेषिकाः । "कर्म" इति जैनाः । "संस्कारः" इति सौगताः । "पुण्यापुण्ये" इति वेदान्तिनः । "शुभाशुभे" इति गणकाः । "धर्माधर्मौ" इति सांख्याः । "पाशः" इति शैवाः । एवमेते तस्य-अदृष्टस्य पर्य्यायाः-प्रतिशब्दाः, मनीषिभिः कीर्तिताः । तदेवमदृष्टं भिन्नभिन्नेन नाम्ना सर्वेऽपि दार्शनिकाः स्वीकुर्वन्तीति ।

अथानेनादृष्टेनाऽऽत्मनः कथं संयोग इति चेत्, अत्रोच्यते— अस्यादृष्टस्य हिंसाऽनृतादयो ये हेतवः पूर्वमुक्तास्तत्क्रियाध्यवसाय-परिणत आत्मा, तेन कर्मणाऽन्योन्यसम्बन्धेन बन्धनप्राप्तेः । अमूर्तस्यापि मूर्तेन सहाऽऽकाशादौ संयोगस्य दर्शनात्, आत्मनोऽपि कर्म-संयोगे स्वीक्रियमाणे न्यत्वभावाच्च । अतश्च हेतोर्मुमुक्षुभिः सूक्ष्मेक्षिभिश्च क्लिष्टकर्मसमूहकारणं, यथार्थपदार्थज्ञानप्रतिकूलमज्ञानविवर्धनं लोकायतमतं विज्ञेयं, त्याज्यञ्च । अत एवोक्तमुपाध्यायप्रवरैः,-युक्तिरिति—

(कल्पलता)

युक्तिर्मुक्तिप्रसरहरणी नास्ति का नास्तिकानां,
सर्वा गर्वात् किमु न दलिता सा नयैरास्तिकानाम् ॥
ध्वस्तालोका किमु न जगति ध्वान्तधारा वत स्यात्,
किं नोच्छेत्त्री रविकरततिर्दुःसहोदेति तस्याः ॥१२॥

अन्वयः—नास्तिकानाम्, का युक्तिः, मुक्तिप्रसरहरणी, नास्ति, सा, सर्वा, आस्तिकानाम्, नयैः, गर्वात्, न, दलिता, किमु । बत, ध्वस्तालोका, ध्वान्तधारा, जगति, न स्यात्, किमु, तस्याः, उच्छेत्री, दुःसहा, रविमहिमा न उदेति किम् ?

(अवतारिका)

नास्तिकानाम्—नास्त्यदृष्टं परलोको नेति मतिर्येषान्ते नास्तिकाश्चार्वाकास्तेषान्तथा । **का युक्तिः**-कीदृशी विचारणा, कीदृशस्तर्को वा । **मुक्तिप्रसरहरणी**—मुक्तेर्मोक्षस्य प्रसरः प्रवाहो मार्गो वा मुक्तिप्रसरस्तस्य हरणी दूरीकर्त्री अपहारिका विनाशिकेति यावत्तथा । **न**-नहि । **अस्ति**-वर्तते । अपितु सर्वापि तदीया युक्तिर्मुक्तिप्रसरावरोधिकैवेति भावः परन्त्विति शेषः । **सा**-प्रसिद्धा पूर्ववर्णिताः **सर्वा** निखिलाऽपि तदीया युक्तिः । **आस्तिकानाम्**—अस्त्यदृष्टं परलोकः सिद्धिश्चेति मतिर्येषां त आस्तिका, आर्हतादयस्तेषान्तथा । **नयैः**—न्यायैः सप्तनयादिभिरिति यावत् । **गर्वात्**—मदात्, अभिमानादिति यावत् । **न**-नहि । **दलिता**-पराजिता । **किमु**-प्रश्नार्थकमव्ययम् । कलसे निजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमकारिता गुणः । स तदुच्चकुचो भवन्प्रभाभरचक्रभ्रममातनोति यत् ॥ इति नैषधीयचरित-द्वितीयसर्गस्थ-सप्तविंशतमे श्लोके प्रश्नार्थकस्य किमु शब्दस्य दर्शनात् । **बत**-खेदार्थकमव्ययम् । **ध्वस्तालोका**-ध्वस्तो विनाशित आलोकः प्रकाशो यया सा तथा । **ध्वान्तधारा**—अन्धकारपरम्परा । **जगति**—संसारे । **न**—नहि । **स्यात्**—भवेत् । **किमु**—सम्भावनायाम् । **तस्याः**—ध्वान्तधारायाः । **उच्छेत्री**—उच्छेदनकर्त्री, समुन्मूलयित्रीति यावत् । **दुःसहा**—दुःखेन सोढुं योग्या ।

रविकरततिः–सूर्यकिरणविस्तारो न स्यात् । न–नहि । उदेति–उदयं लभते, प्रकाशते इति यावत् । किम्–प्रश्नार्थकमव्ययम् । अपि तु प्रकाशत एवेति तात्पर्यम् । सूर्यकिरणसन्ततिर्यथा जगति ध्वान्त-निवृत्तिपुरस्सरं प्रकाशते तथैवाऽऽस्तिकनयाः सुधियस्सरस्वतो नास्तिकानां युक्तिगर्वदुर्विपाकमासादयन्तीति भावः ।

अत्र काव्यप्रकाशादिरीत्या दृष्टान्तालङ्कारः । काव्यानुशासनोक्तप्रकारेण दृष्टान्तस्य निदर्शनायामन्तर्भावान्निदर्शनैवालङ्कारः ।

आर्हतमताश्रयणाय प्रेरयति, वार्तामिति—

(कल्पलता)

वार्तामिमामत्र निशम्य सम्यक्, त्यक्त्वा रसं नास्तिकदर्शनेषु ।
ऐकान्तिकात्यन्तिकशर्महेतुं, श्रयन्तु वादं परमार्हतानाम् ॥१३॥

अन्वयः—अत्र, इमां, वार्तां, सम्यक्, निशम्य, नास्तिकदर्शनेषु, रसं, त्यक्त्वा, ऐकान्तिकात्यन्तिकशर्महेतुं, परमार्हतानां (आर्हतानां परं), वादं, श्रयन्तु ।

(कल्पलतावतारिका)

अत्र—शास्त्रवार्तासमुच्चयात्मग्रन्थे । इमाम्–पूर्वप्रकाशिताम् । वार्ताम्– दर्शनसिद्धान्तम् । सम्यक्– अविकलम्, समीचीनतयेति यावत् । निशम्य–समाकर्ण्य । नास्तिकदर्शनेषु–चार्वाकादिदर्शनेषु । रसम्–अनुरागम् स्पृहामिति यावत् । त्यक्त्वा–सन्त्यज्य । ऐकान्तिकात्यन्तिकशर्महेतुम्- नियमेनात्यन्तकल्याणकारणम् । परमार्हतानाम्–अर्हतो जिनस्येमे आर्हताः, परमाश्च ते आर्हताः परमार्हतास्तेषान्तथा । यद्वा आर्हतानाम्–अर्हत्सम्बन्धिनाम् । परम्–उत्कृष्टम्, परमश्रेयस्करम् ।

वादम्–सिद्धान्तवादम्। श्रयन्तु–आश्रयन्तु। संसेवन्तामिति यावत्। ऐकान्तिकात्यन्तिकशर्महेतु-परमार्हतवादाश्रयणे पूर्वोक्तवार्ताश्रवण-नास्तिकदर्शनानुरागत्यागयोर्हेतुत्वात्काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

(कल्पलता)

अभिप्रायः सूरेरिह हि गहनो दर्शनतति–
निरस्या दुर्धर्षा निजमतसमाधानविधिना।
तथाप्यन्तः श्रीमन्नयविजयविज्ञांह्रिभजने,
न भग्ना चेद्भक्तिर्न नियतमसाध्यं किमपि मे ॥१४॥

अन्वयः—हि, इह, सूरेः, अभिप्रायः, गहनः, निजमतसमाधानविधिना, दुर्धर्षा, दर्शनततिः, निरस्या, तथापि, चेत्, श्रीमन्नयविजयविज्ञांह्रिभजने, अन्तः, भक्तिः, न, भग्ना, मे, किमपि, असाध्यम्, न, नियतम्।

(कल्पलतावतारिका)

हि–निश्चयेन। इह–शास्त्रवार्तासमुच्चयात्मकग्रन्थे। सूरेः–सूरिपदभाजनमनीषिप्रवरस्य, हरिभद्रसूरेरिति यावत्। अभिप्रायः–आशयः। "आशयः स्यादभिप्राये पनसाधारयोरपि" इति मेदिनी। गहनः–कठिनः। निजमतसमाधानविधिना – स्वमतसाधकसमाधानप्रकारेण। दुर्धर्षा–दुःखेन धर्षितुं योग्या। दर्शनततिः—परदर्शनकदम्बकम्। निरस्या–निराकरणीया। तथापि–तादृशदर्शनततिनिराकरणरूपकार्यसत्त्वेऽपि। चेत्—यदि। श्रीमन्नयविजयविज्ञांह्रिभजने—उपाध्यायश्रीनयविजयविद्गुरुप्रवरचरणसेवायाम्। अन्तः–अन्तःकरणे। भक्तिः– भजनम्। भाव इति यावत्। न–नहि। भग्ना—विनष्टा। तर्हीति शेषः।

मे-मम यशोविजयस्य। इते इति शेषः। किमपि-किञ्चिदपि। असाध्यम्-साधयितुमशक्यम्। न-नहि। सर्वं सुसाध्यमिति भावः। एतेन श्रीमन्नयविजयविबुधाभिधाननिजगुरौ स्वस्य भक्तिर्व्यज्यते। तथा च वस्तुस्थितिः।

(कल्पलता)

> यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशया,
> भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः।
> प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
> स्तेन न्यायविशारदेन रचिते ग्रन्थे मतिर्दीयताम् ॥१५॥

अन्वयः—अत्र, प्रकृष्टाशयाः, जीतविजयप्राज्ञाः, गुरवः, च, सनयाः, नयादिविजयप्राज्ञाः, विद्याप्रदाः, (गुरवः), भ्राजन्ते, च, यस्य, प्रेम्णाम्, सद्म, सुधीः, सोदरः, पद्मविजयः, जातः, न्यायविशारदेन, तेन, रचिते, ग्रन्थे, मतिः, दीयताम्।

(कल्पलतावतारिका)

यस्य-श्रीयशोविजयोपाध्यायस्य। प्रकृष्टाशयाः-उत्तमाभिप्रायाः। जीतविजयप्राज्ञाः-जीतविजयनामानो मनीषिणः। गुरवः-पितृव्यगुरवः। "भ्राजन्ते" इति पदस्य देहलीदीपन्यायेनोभयत्र सम्बन्धात्। भ्राजन्ते-शोभन्ते। च-पुनः। सनयाः-नयविवेकशालिनः। नयादिविजयप्राज्ञाः-श्रीनयविजया मनीषिणः। विद्याप्रदाः-ज्ञानदातारो गुरवः। भ्राजन्ते-विराजन्ते। एतद्विशेषणं निजगुरुभिर्वाराणस्यादिस्थले स्वं नीत्वा सह स्थित्वाऽऽन्वीक्षिक्यादिविद्याः पाठिता इति व्यनक्ति। च-पुनः। यस्य-महोपाध्यायस्य। प्रेम्णाम्-प्रीतीनाम्।

सद्म–सदनम्। सुधीः–[illegible]। सोदरः–भ्राता। पद्मवि-जयः–पद्मविजयनामा। जातः–समजनि। तेन [illegible] विशुद्धगुरु-सम्प्रदायप्रयोज्य शुद्धविद्याभाजनेन [illegible]। न्यायविशारदेन–न्याय-विशारदेति काशीनिवासि[illegible], यथा च [illegible]—"न्यायविशारदत्वबिरुदं, काश्यां प्रदत्तं बुधैः" इति। [illegible] येन। रचिते–विरचिते। अत्र ग्रन्थे—[illegible]। "पञ्चाङ्गं वाक्यं ग्रन्थः।" "[illegible] पूर्वापरतयोत्तरम्। निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।" अथवा—सम्बन्धप्रयो-जनज्ञानादिजनितशुश्रूषाजन्यश्रुतिविषयशब्दसन्दर्भो ग्रन्थः। मतिः–बुद्धिः। दीयताम्–न्यस्यताम्। सावधानेन विदुषा ग्रन्थोऽयमालोचनीय इति भावः।

ग्रन्थोऽयं विशुद्धगुरुसम्प्रदायप्रयोज्य शुद्धविद्याभाजनन्यायवि-शारदविवेचितो नहि येन केनापि सुप्रवेश, इति व्यङ्ग्यस्यैवार्थस्य-भङ्ग्याऽभिधानात्पर्य्यायोक्तनामाऽलङ्कारः। पर्य्यायोक्तस्य च वैशद्येन प्रतीयमानार्थतया ध्वनावेवाऽन्तर्भाव आलोकनीयो ध्वन्यालोकादौ। "पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचो भङ्ग्यन्तराश्रयम्" बहुत्र लक्षणश्रवणात्। अनुप्रासश्च शब्दालङ्कारो विज्ञेयः। कविनिष्ठसुधीवरगुरुवरजीतविजय-नयादिविजय-सोदरपद्मविजयविषयकरत्याख्यभावस्य पर्य्यायोक्ताङ्ग-तया प्रेयोऽलङ्कारश्चाप्यवसेयः।

चरमसूक्तद्वयं प्रतिस्तवकप्रान्तेऽवतार्यम्।

आत्मसिद्धिन्तथाऽदृष्टसिद्धिं चार्वाकखण्डनम्।
मङ्गलं साधयित्वा च, प्रथमः स्तवकोऽभवत् ॥१॥

इति शासनसम्राट्-तपागच्छाधिपति-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जगद्-गुरु-बालब्रह्मचारिभट्टारकाचार्यमहाराजश्रीविजयनेमिसूरीश्वरमहाराज-पट्टालङ्कारशास्त्रविशारदकविरत्नपीयूषपाणिपूज्यपादाचार्यश्रीविजयामृतसूरिवरसन्दृब्धायां महोदधिकल्पशास्त्रवार्तासमुच्चय-कल्पलतानुसारिण्यां-कल्पलतावतारिकायां प्रथमः स्तवकः ।

❀ अथ द्वितीयः स्तवकः ❀

द्वितीयस्तवकादिममङ्गलं निबध्नाति अप्रतीपायेति—

(कल्पलता)

अप्रतीपाय दीपाय, सतामान्तरचक्षुषे ।
नमः स्याद्वादितन्त्राय, स्वतन्त्राय विवस्वते ॥१॥

अन्वयः—अप्रतीपाय, दीपाय, सताम्, आन्तरचक्षुषे, स्वतन्त्राय, विवस्वते, स्याद्वादितन्त्राय, नमः ।

(कल्पलतावतारिका)

अप्रतीपाय—न प्रतीपं प्रतिकूलं किमपि पवनादिकं यस्य तस्मै, अप्रतिहतायेति यावत् । दीपाय—प्रदीपाय हृत्कन्दराबभासनप्रदीपात्मने । सताम्—सत्याभिलापलसितात्मनाम् । आन्तरचक्षुषे—आभ्यन्तरनेत्रस्वरूपाय। स्वतन्त्राय—यथेच्छकरणसमर्थाय। विवस्वते-सूर्य्यस्वरूपाय विश्वदीपायेति यावत्। स्याद्वादितन्त्राय—अर्हच्छासनाय, जिनागमायेति यावत्। "अर्हञ्जिनः पारगतस्त्रिकालवित्, क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः । शम्भुः स्वयम्भूर्भगवाञ्जगत्प्रभुस्तीर्थङ्करस्तीर्थकरो जिने-

सद्म—सदनम्। सुधीः—समीचीनबुद्धिः । सोदरः—सगर्भः। पद्मविजयः—पद्मविजयनामा। जातः—समजनि। तेन—तादृशेन विशुद्धगुरुसम्प्रदायप्रयोज्य शुद्धविद्याभाजनेनेत्यर्थः । न्यायविशारदेन—न्यायविशारदेतिकाशीविद्वत्प्रदत्तबिरुदेन, तथा च तेषामेवोक्तिः—"यस्मै न्यायविशारदत्वविरुदं, काश्यां प्रदत्तं बुधै" रिति। महोपाध्याययशोविजयेन। रचिते—विरचिते। अत्र ग्रन्थे—कल्पलताभिधपञ्चाङ्गकवाक्ये। "पञ्चाङ्गकं वाक्यं ग्रन्थः।" "विशयो विषयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।" अथवा—सम्बन्धप्रयोजनज्ञानाहितशुश्रूषाजन्यश्रुतिविषयशब्दसन्दर्भो ग्रन्थः। मतिः—बुद्धिः। दीयताम्—न्यस्यताम्। सावधानेन विदुषा ग्रन्थोऽयमालोचनीय इति भावः।

ग्रन्थोऽयं विशुद्धगुरुसम्प्रदायप्रयोज्य शुद्धविद्याभाजनन्यायविशारदविवेचितो नहि येन केनापि सुप्रवेश, इति व्यङ्ग्यस्यैवार्थस्य भङ्ग्याऽभिधानात्पर्यायोक्तनामाऽलङ्कारः। पर्यायोक्तस्य च वैशद्येन प्रतीयमानार्थतया ध्वनावेवाऽन्तर्भाव आलोकनीयो ध्वन्यालोकादौ। "पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचो भङ्ग्यन्तराश्रयम्" बहुत्र लक्षणश्रवणात्। अनुप्रासश्च शब्दालङ्कारो विज्ञेयः। कविनिष्टसुधीवरगुरुवरजीतविजयनयादिविजय-सोदरपद्मविजयविषयकरत्याख्यभावस्य पर्यायोक्ताङ्गतया प्रेयोऽलङ्कारश्चाप्यवसेयः।

चरमसूक्तद्वयं प्रतिस्तबकप्रान्तेऽवतार्यम्।

आत्मसिद्धिन्तथाऽदृष्टसिद्धिं चार्वाकखण्डनम्।
मङ्गलं साधयित्वा च, प्रथमः स्तबकोऽभवत् ॥१॥

इति शासनसम्राट्-तपागच्छाधिपति-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जगद्-गुरु-आबालब्रह्मचारि-सूरिचक्रचक्रवर्ति-महाराजश्रीविजयनेमिसूरीश्वरमहाराज-पट्टालङ्कार-व्याकरणविशारद-कविरत्न-पीयूषपाणि-पूज्यपादाचार्यश्रीविजयामृतसूरीश्वरसन्दृब्धायां महोदधिकल्पशास्त्रवार्तासमुच्चय-कल्पलतानुसारिण्यां-कल्पलतावतारिकायां प्रथमः स्तबकः ।

❀ अथ द्वितीयः स्तबकः ❀

द्वितीयस्तबकादिमङ्गलं निबध्नाति अप्रतीपायेति—

(कल्पलता)

अप्रतीपाय दीपाय, सतामान्तरचक्षुषे ।
नमः स्याद्वादितन्त्राय, स्वतन्त्राय विवस्वते ॥१॥

अन्वयः—अप्रतीपाय, दीपाय, सताम्, आन्तरचक्षुषे, स्वतन्त्राय, विवस्वते, स्याद्वादितन्त्राय, नमः ।

(कल्पलतावतारिका)

अप्रतीपाय—न प्रतीपं प्रतिकूलं किमपि पवनादिकं यस्य तस्मै, अप्रतिहतायेति यावत् । दीपाय—प्रदीपाय हृत्कन्दराऽवभासनप्रदीपात्मने । सताम्—सत्याभिलाषलसितात्मनाम् । आन्तरचक्षुषे—आभ्यन्तरनेत्रस्वरूपाय । स्वतन्त्राय—यथेच्छकरणसमर्थाय । विवस्वते—सूर्यस्वरूपाय विश्वदीपायेति यावत् । स्याद्वादितन्त्राय—अर्हच्छासनाय, जिनागमायेति यावत् । "अर्हञ्जिनः पारगतस्त्रिकालवित्, क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः । शम्भुः स्वयम्भूर्भगवाञ्जगत्प्रभुस्तीर्थङ्करस्तीर्थकरो जिने-

[illegible] ॥१॥ [illegible] । [illegible]

[illegible] ॥ [illegible] । नमः—

नमस्कारोऽस्तु । [illegible] ।

(शास्त्रवार्ता०)

कालादीनां च कर्तृत्वं, मन्यन्तेऽन्ये प्रवादिनः ।
केवलानां तदन्ये तु, मिथः सामग्र्यपेक्षया ॥५२॥

अन्वयः—अन्ये, च, प्रवादिनः, कालादीनां, केवलानां, कर्तृत्वं, मन्यन्ते, तदन्ये, तु, मिथः, सामग्र्यपेक्षया (मन्यन्ते) ।

(अव०) **अन्ये च**- एकान्तवादिनः । **प्रवादिनः काला-दीनां केवलानां**—परस्परसहेतुरहितानामन्यनिरपेक्षाणामिति यावत् । **कर्तृत्वम्**—असाधारणत्वेन हेतुत्वं । **मन्यन्ते तदन्ये तु**—अनेकान्त-वादिनः परमार्हता इति यावत् । **सामग्र्यपेक्षया**—सामग्रीप्रविष्टत्वेन । **मथः**—परस्परम्, सहकारित्वेन कर्तृत्वं मन्यन्ते, इत्यर्थः ।

तथा च सम्मतिसूत्रम्—"कालो सहाव-णियई पुव्वकयं पुरिस-कारणेगन्ता । मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ हुंति सम्मत्तं । (कालः स्वभावनियती पूर्वकृतं पुरुषकारणमेकान्तात् । मिथ्यात्वं त एव तु समासतो भवन्ति सम्यक्त्वम्) इति ।

तत्र केवलकालकर्तृत्ववादिनामभिप्रायः, तथाहि—कालव्यति-रेकेण स्त्रीपुंससंयोगादिजन्यत्वेन पराभिमतस्यापि गर्भस्य जन्म न भवति । नहि तज्जन्मनि गर्भपरिणतेर्हेतुत्वम् अपरिणतस्यापि कदा-चेज्जन्मदर्शनात् । तथा कालोऽपि शीतोष्णवर्षाद्युपाधिः, तद्व्यतिरे-

केण न भवति। तथा शुभादिकम्—स्वर्गादिकम् लोके यत्किञ्चित् घटादिकार्य्यं दृश्यते, तदपि कालव्यतिरेकेण न भवति। कर्मदण्डादिसत्त्वेऽपि कालान्तर एव स्वर्गघटाद्युत्पत्तेः। तस्मात् असौ कालः स्वातन्त्र्येण कर्तेति।

किञ्च—काल उत्पन्नानां प्रकृतपर्य्यायोपचयं करोति। तथा कालः प्रकृतपर्य्यायान्तरपर्य्यायभाजः करोति। तथा कालः-अजनितकारणेषु पराभिमतकारणेषु सत्सु विवक्षितकार्य्यमुपदधाति, अतश्च हेतोः कालः सृष्टिस्थितिप्रलयहेतुतयाऽनपलपनीयकारणताकः।

एवं स्थाल्यादिसन्निधाने सत्यपि कालादृते शुद्धानां विलक्षणरूपरसादिरूपविक्लित्तिपरिणामोऽपि न दृश्यतेऽतोऽपि कालस्य कर्तृत्वमुपपद्यते। किं बहुना—कालाभावे गर्भादि सर्वं कार्य्यजातमव्यवस्थयाऽनियमेनैव स्यात्। पराभिमतमातापित्रादिहेतुसन्निधानमात्रादेवाऽविलम्बेन गर्भाद्युत्पत्तिप्रसङ्गात्।

ननु कालोऽपि यद्येक एव सर्वकार्य्यहेतुस्तदा युगपदेव सर्वकार्य्योत्पत्तिः। तत्तत्कार्य्ये तत्तदुपाधिविशिष्टकालस्य हेतुत्वे चोपाधीनामेवाऽऽवश्यकत्वात्। कार्य्यविशेषहेतुत्वमिति गतं कालवादेनेति चेत्। अत्र नव्याः—क्षणरूपः कालोऽतिरिच्यत एव, स्वजन्यविभागप्रागभावविशिष्टकर्मणस्तथात्वे जाते विभागे तदभावापत्तेः। तदाऽन्यविशिष्टकर्मणस्तथात्वेऽननुगमात्। तस्य च तत्क्षणवृत्तिकार्य्ये तत्पूर्वक्षणत्वेन हेतुत्वम् तत्क्षणवृत्तित्वञ्च तत्क्षणस्याप्यभेदेऽपि "इदानीं क्षणः" इति व्यवहारात् कालिकाऽऽधाराधेयभावसिद्धेः। अतस्तत्तत्क्षणतन्नाशानां तत्तत्पूर्वक्षणजन्यत्वाद् न क्षणिकत्वानुपपत्तिः। एवञ्च क्षणिकेनैव क्षणेन कार्य्यविशेषजननात् नातिरिक्तहेतुसिद्धिरिति।

केवलस्वभावकारणतावादिनामभिप्रायः—

(शास्त्रवार्ता०)

न स्वभावातिरेकेण, गर्भबालशुभादिकम् ।
यत्किञ्चिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल॥५७॥

अन्वयः—लोके, गर्भबालशुभादिकं, यत्किञ्चित्, स्वभावातिरेकेण, न जायते, तत्, असौ, कारणं, किल ।

(अव०) यस्मात् स्वभावमतिक्रम्य, **गर्भबालशुभादिकं**-किञ्चिदपि कार्य्यं । **लोके न जायते**-तस्मादसौ स्वभावः । **कारणम्** -कादाचित्कत्व-नियामक इत्यर्थः । आकाशादीनां कादाचित्कत्ववद् घटादीनां कादाचित्कत्वस्येतरानियम्यत्वात् ।

किञ्च सर्वे भावाः स्वभावेन विशिष्टसंस्थानादिप्रतिनियतरूपेण स्वीयस्वीयसत्तायां वर्तन्ते, नाशकाले निवर्तन्ते च, अनियतभावनिरपेक्षा भवन्ति ।

जगति स्वभावेन विना प्रतिनियतकालव्यापारादिसामग्रीसमवधानेऽपि मुद्गपक्तिरपि नेष्यते, यतोऽश्वमापस्य कङ्कटुकस्य पक्तिर्न भवति । न ह्यश्वमापे विलक्षणाग्निसंयोगादिकं नास्तीति वक्तुं शक्यते एकयैव क्रियया तत्तदन्यवह्निसंयोगात्, नचादृष्टवैषम्यात् तदपाकः, दृष्टसाद्गुण्ये तद्वैषम्याऽयोगात् । अन्यथा दृष्टदण्डनुन्नमपि चक्रं न भ्राम्येत् ।

तत्स्वभावरहितादपि चेदधिकृतकार्य्योत्पादः स्वीक्रियेत तदाऽनिष्टप्रसंगोऽनिवारितः स्यात् । अतत्स्वभावस्य तुल्यतया मृदा कुम्भ एव जन्यते न पटादीति नियमो न स्यात् ।

ननु नान्तरत्वमात्रं तज्जननयोरेकमुच्यते येनैवमापत्तिः सम्भवेत्। किन्तु सामर्थ्येनैव कार्य्यजनिका भूतः प्रमाणस्य च प्रति मति स्वरूपयोरन्यतैव नेति को दोष इति चेत् अत्र स्वभाववादिनः—

अन्तरङ्गत्वात् स्वभाव एव कार्य्यहेतुर्न बाह्यकारणम्। न च मृत्स्वभावाविशेषाद् घटादिकार्य्याविशेषप्रसङ्गः। "स्वस्य भावः कार्य्यजननपरिणतिः" इति स्वभावार्थत्वात्। तस्याश्च कार्य्यैकव्यङ्ग्यत्वात्। नन्वेवमङ्कुरजननस्वभावं बीजं प्रागेवाङ्कुरं जनयेत्। सहकारिलाभाऽलाभाभ्यां हेतोः कार्य्यजननाजनने उपपद्येते इति चेत्, न, सहकारिचक्रान्तर्भावेन विलक्षणबीजत्वेनैवाङ्कुरहेतुत्वौचित्यात्।

न च सहकारिचक्रस्याऽतिशयाधायकत्वं त्वयाऽपि कल्पनीयमिति तस्य तत्कार्य्यजनकत्वकल्पनमेवोचितमिति वाच्यम्। पूर्वपूर्वोपादानपरिणामानामेवोत्तरोत्तरोपादेयपरिणामहेतुत्वात्। अत एव कालवादाप्रवेशात्। न च चरमक्षणपरिणामरूपबीजस्यापि द्वितीयादिक्षणपरिणामरूपाङ्कुराजनकत्वात् व्यक्तिविशेषमवलम्ब्यैव हेतुहेतुमद्भावो वाच्योऽन्यथा स्वावृत्तिविशेषानुगतप्रथमादिचरमपर्य्यन्ताङ्कुरक्षणान् प्रति स्वावृत्तिविशेषानुगतानां चरमबीजक्षणादिकोपान्त्याङ्कुरक्षणानां हेतुत्वे कार्य्यकारणतावच्छेदककोटावेकैकक्षणप्रवेशाप्रवेशाभ्यां विनिगमनाविरहप्रसङ्गात्। तथा च तज्जातीयात् कार्य्यात् तज्जातीयकारणानुमानभङ्गप्रसङ्ग इति वाच्यम्। सादृश्यतिरोहितवैसादृश्येनाङ्कुरादिना तादृशबीजादीनामनुमानसम्भवात्। प्रयोज्यप्रयोजकभावस्यैव विपक्षबाधकतर्कस्य जागरूकत्वात्। अधिकमध्यात्ममतपरीक्षायाम्। ततः स्वभावहेतुकमेव जगदिति स्थितम्। तथा चोक्तम्—

भोगप्रसङ्गात्। अतो जगद्धेतुत्वं कर्मण्येव नान्यत्र। पराभिमतहेतूनां व्यभिचारादिति भावः। किञ्च तत्कर्मवैगुण्ये मुद्गपक्तिरपि न स्यात्। अतएव 'दृष्टकारणानामदृष्टव्यञ्जकत्वम्' इति सिद्धान्तः। तदुक्तम्—

यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः, फलं निधानस्थमिवाऽवतिष्ठते।
तथा तथा तत्प्रतिपादनोद्यता, प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते॥

न च विपाककालापेक्षणात् कालवादप्रवेशस्तस्य कर्मावस्थाविशेषरूपत्वात्। न च कर्महेत्वपेक्षया वैयग्र्यम् अनादित्वात् कर्मपरम्परायाः। एवञ्च केवलानां कालादीनां जगद्धेतुत्वं न तु समुदितानामिति तेषां तात्पर्य्यम्।

॥ इति कर्मवादः ॥

अथ सिद्धान्तवादः—

(शास्त्रवार्ता०)

तत्तत्कालादिसापेक्षो, विश्वहेतुः स चेन्ननु।
मुक्तः स्वभाववादः स्यात्, कालवादपरिग्रहात्॥७६

अन्वयः— तत्तत्कालादिसापेक्षः, सः, विश्वहेतुः, चेत्, ननु, मुक्तः, स्वभाववादः, स्यात्, कालवादपरिग्रहात्।

(अव०) तत्तत्कालादिसापेक्षः-तत्तत्क्षणादिसहकृतः। सः-स्वभावः। विश्वहेतुः-कालक्रमेण कार्य्यक्रमोपपत्तेरिति चेत् ननु—इत्याक्षेपे। स्वभाववादो मुक्तः-स्यात्। कालवादपरिग्रहात्—कालहेतुत्वाश्रयणात्। ननु घटादिकम्प्रति स्वभाव एव हेतुरस्त्विति चेत्, उक्तम्, परं न युक्तम्। एकजातीयहेतुं विना कार्यैकजात्याऽसम्भवात्। कुर्वद्रूपत्वस्य च जातित्वाभावेन घटं प्रति घटकुर्वद्रूपत्वेन हेतुत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्।

सामग्रीत्वेन कार्य्यव्याप्यत्वस्य वास्तविकत्वेन गौरवस्याऽदोषत्वात्, प्रत्यभिज्ञादिबाधेन क्षणिकत्वस्य निषेत्स्यमानत्वाच्च । किञ्चैकत्र घटपूर्वरूपसत्त्वेऽन्यत्र घटानुत्पत्तेर्देशनियामकहेत्वाश्रयणे स्वभाववादत्यागः । दण्डादौ घटादिहेतुत्वं प्रमायैव प्रेक्षावत्प्रवृत्तेश्च । अन्यथा दण्डादिकं विनापि घटादिसम्भावनया निष्कम्पप्रवृत्त्यनुपपत्तेरिति दिक् । न च निर्हेतुकाभावा इत्यभ्युपगमेनापि स्वभाववादसाम्राज्यम् । तत्र हेतूपन्यासे वदतो व्याघातात् । तदुक्तम्—

न हेतुरस्तीति वदन् सहेतुकं, ननु प्रतिज्ञां स्वयमेव बाधते ।
अथापि हेतुप्रणयादसौ भवेत्, प्रतिज्ञया केवलयाऽस्य किं भवेत् ॥

न च ज्ञापकहेतून्यासेऽपि कारकहेतुप्रतिक्षेपवादिनो न स्वपक्षबाधेति वाच्यम्, ज्ञानजनकत्वेनैव ज्ञापकत्वात् । अनियतावधित्वे कादाचित्कत्वव्याघातात्, नियतावधिसिद्धौ तत्त्वस्यैव हेतुत्वात्मकत्वाच्च । अन्यथा "गर्द्दभात् धूमः" इत्यपि प्रमीयेत ।

अत एव केवलकालवादोऽपि न साधीयान् । अन्यानपेक्षात् केवलान् कालात् कस्यचिदपि कार्य्यस्यानुत्पत्तेः । यदि केवलात् कालात् कार्य्यस्योत्पत्तिः स्यात्तदा तेन कारणेन भवितव्यम् । सैव नास्तीति कुतस्तस्य जगद्धेतुत्वम् । विवक्षितसमये कार्य्यान्तरस्याप्युत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च तत्क्षणवृत्तिकार्य्ये तत्पूर्वक्षणहेतुत्वे कथनान्न दोष इति पूर्वमुक्तमेवेति वाच्यम् । अग्रे भाविनस्तत्क्षणवृत्तित्वस्यैव फलत आपाद्यत्वात् । तत्क्षणवृत्तिकार्य्ये तत्पूर्वक्षणेन हेतुत्वम् । तदुत्तरक्षणविशिष्टे कार्य्ये तत्क्षणत्वेन वा ? इति विनिगमनाविरहाच्च ।

किञ्च यस्माद्धेतोः समयादावविशिष्टेऽपि तत्कालजन्यं घटादि सर्वत्रैव नोत्पद्यते तन्त्वादौ तदनुपपत्तेरतस्तत्फलं विचक्षणैः कालाति-

रिक्तदेशादिहेतुजन्यं नियोगात् । न च मृदोऽन्यत्र घटाभावापत्तिरेव, काले हेतुमत्त्वेऽपि देशे कार्याभावापत्तेरिति वाच्यम् । मृदजन्यत्वेन मृद्वृत्तित्वस्याऽऽपादकत्वात्, मृदजन्यत्वञ्च जन्यतावच्छेदकत्वेन मृद्भिन्न-त्वम् । अतो न तर्कमूलव्याप्त्यसिद्धिः । न च तत्स्वभावादेव तस्य काचित्कत्वम् फलजननस्वभावत्वस्यैवाऽऽपादकत्वात् ।

तथा चोक्तं सूरिपादैः—

अतः कालादयः सर्वे समुदायेन कारणम् ।
गर्भादेः कार्य्यजातस्य विज्ञेया न्यायवादिभिः ॥७९॥
न चैकैकत एवेह क्वचित्किञ्चिदपीक्ष्यते ।
तस्मात् सर्वस्य कार्य्यस्य सामग्री जनिका मता ॥८०॥

इह जगति नियत्यादेरेकैकतः क्वापि किञ्चिद् घटादिकार्य्यं जाय-मानं न प्रतीयते । तस्माद्धेतोः सर्वस्य घटादेः कार्य्यस्य सामग्री कार्य्यो-पधायिका मता । सामग्र्या कारणकूटेनैव कार्य्यजातस्य जननियमात् ।

एवं ये केवलं पुरुषार्थस्य कार्यमात्रहेतुत्वं वदन्ति तेऽपि भ्रान्ता एव । सत्यपि पुरुषार्थे बहुशः कार्य्यानुत्पादस्य दर्शनादिति सर्वं सुस्थम् ।

सामग्र्या एव हेतुत्वं, कालादेर्न पृथक् पृथक् ।
इतीदं साधयित्वाऽयं, द्वितीयः स्तबको गतः ॥२॥

इति शासनसम्राट्–तपागच्छाधिपति–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–जगद्-गुरु–बालब्रह्मचारिभट्टारकाचार्यमहाराजश्रीविजयनेमिसूरीश्वरमहाराज-पट्टालङ्कारशास्त्रविशारदकविरत्नपीयूषपाणिपूज्यपादाचार्यश्रीविजया-मृतसूरिवरसन्दृब्धायां महोदधिकल्पशास्त्रवार्तासमुच्चय–कल्पलतानु-सारिण्यां-कल्पलतावतारिकायां द्वितीयः स्तबकः ।

अथ तृतीयः स्तवकः

[illegible] मङ्गलमाचरति—

([illegible])

सर्वैः शास्त्रपरिश्रमैः शमवतामाकालमेकोऽपि यत्,—
साक्षात्कारकृते धृते हृदि तमो लीयेत यस्मिन् मनाक्।
यस्यैश्वर्यमपोहितुं न जगदुत्पादस्थितिध्वंसनै—
स्तं देवं निरवग्रहमहानन्दाय वन्दामहे ॥१॥

अन्वयः—यत्साक्षात्कारकृते, शमवताम्, आकालम्, एकोऽपि, शास्त्रपरिश्रमः, सर्वैः, यस्मिन्, मनाक् (अपि), हृदि, धृते (सति), तमः, लीयेत, च, यस्य, ऐश्वर्यम्, जगदुत्पादस्थितिध्वंसनैः, अपोहितुम्, निरवग्रहमहानन्दाय, तम्, देवम्, वन्दामहे।

(सरलार्थप्रकाशिका)

यत्साक्षात्कारकृते—यदीयसाक्षात्कारार्थम्। "अर्थे कृते च तादर्थ्ये" इति कोषः। शमवताम्-शान्तिशालिनाम् योगीश्वराणामिति यावत्। आकालम्-सकलमपि कालमित्यर्थः। भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धिपदार्थज्ञानपुरस्सरमिति यावत्। एकोऽपि—एकत्वसंख्या-विशिष्टोऽपीत्यर्थः। शास्त्रपरिश्रमः-शास्त्रविषयकाभ्यासः। सर्वैः—समस्तशास्त्रविषयकः इत्यर्थः। यस्मिन्—यादृशे देवे। मनाक्-ईषत्। (अपि सम्भावनायाम्) "अपि सम्भावना प्रश्न-शङ्का गर्हा समुच्चये" इति मेदिनी। हृदि—अन्तःकरणे। धृते-सम्यक्स्थापिते। (सति) तमः—अज्ञानान्धकारः। लीयेत—विनश्येत्। च-पुनः। यस्य—

यादृशस्य-भगवतः सर्वज्ञस्य। **ऐश्वर्य्यम्**—माहात्म्यम्। **जगदुत्पाद-स्थितिध्वंसनैः** - संसारोत्पत्त्यवस्थितिविनाशनैः। **अपङ्किलम्**-पङ्किलं कलङ्कितं न। निर्दुष्टमित्यर्थः। **निरवग्रहग्रहमहाऽऽनन्दाय**—निरवग्रहो निरर्गलोऽप्रतिहत इति यावद् ग्रहो ज्ञानम् निरवग्रहग्रहः, तेन यो महाऽऽनन्द आनन्दातिशयो ब्रह्मसाक्षात्कारस्वरूपानन्द इति यावन्निरवग्रहग्रहमहानन्दस्तस्मै तथा। **तम्**—तादृशम्। **देवम्**—देवाधिदेवं प्रभुं जिनेश्वरमिति यावत्। **वन्दामहे**—वन्दनक्रियानिरूपितकर्मताभाजनं कुर्म इत्यर्थः। प्रणमाम इति यावत्। जिनेश्वरविषयकरत्याख्यो भावः कविनिष्ठोऽभिव्यज्यते इति भावध्वनिः, अनुप्रासश्चालङ्कारः।

द्वितीयस्तवके स्वतन्त्रस्य प्रत्येकं कालादेर्जगत्कर्तृत्वं निरस्य सामग्र्यास्तत् समर्थितम्।

अथेदानीं सामग्र्यामीश्वरोऽपि नित्यशुद्धबुद्धमुक्ताचिन्त्यचिच्छक्तियुतोऽनादिसिद्धश्च निक्षिप्यते कैश्चित् तं निक्षेपमसहमानाः सूरिचक्रचक्रवर्तिहरिभद्रसूरिपादास्तदीयपक्षव्युत्पादनपूर्वकं तं निराकरिष्णवः कारिकामवतारयन्ति **ईश्वरःप्रेरकत्वेनेत्यादिना**—

(शास्त्रवार्ता०)

ईश्वरः प्रेरकत्वेन, कर्ता कैश्चिदिहेष्यते।
अचिन्त्यचिच्छक्तियुक्तोऽनादिसिद्धश्च सूरिभिः॥१॥

अन्वयः—इह, कैश्चित्, सूरिभिः, अचिन्त्यचिच्छक्तियुक्तः, अनादिसिद्धश्च, प्रेरकत्वेन, ईश्वरः, कर्ता, इष्यते।

(अव०) **इह**-सामग्र्याम्। **कैश्चित्**-**सूरिभिः**-पातञ्जलाचार्य्यैः।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] यथा चाह पतञ्जलिः—"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" इति । क्लेशाः—अविद्या-अस्मिता-रागद्वेषाभिनिवेशाः, कर्माणि—शुभाशुभानि, तद्विपाको—जात्यायुर्भोगाः, आशयाः—नानाविधवासना-रूपाः संस्काराः । तैरपरामृष्टोऽसंस्पृष्टः, [illegible] । [illegible] । तथा च [illegible] [illegible]

कार्य्याजननं तन्ववस्था, अभिव्यक्तस्यापि जनितकार्य्यस्य केनचि बलवता सजातीयेन विजातीयेन वा लब्धवृत्तिकेनाऽभिभवाद् भ प्यद्वृत्तिकत्वेनावस्थानं विच्छिन्नावस्था। अभिव्यक्तस्य प्राप्तस कारिसम्पत्तेरप्रतिबन्धेन लब्धवृत्तिकतया स्वकार्य्यकरत्वमुदारावस्थ तत्राद्यमवस्थाद्वयं प्रतिप्रसवाख्येन निर्बीजसमाधिना हीयते। अन तु शुद्धसत्त्वमयेन भगवद्ध्यानेनेति। अविद्याभावात् तन्नाशजः कथं तत्त्वज्ञानं तस्य? इति चेत्-अत एव नित्यं तत् नित्यज्ञानवत्त्व देव चायं कपिलप्रभृतिमहर्षीणामपि गुरुः।

यस्य जगत्पतेर्ज्ञानमप्रतिघम्—नित्यत्वेन सर्वविषयत्वात् क्वचि दप्यप्रतिहतम्। वैराग्यं माध्यस्थ्यं च रागाभावादप्रतिघम्, ऐश्वर्य च बाधाभावादप्रतिघम्। तच्चाष्टविधम्—अणिमा, लघिमा, महिमा प्राप्तिः, प्राकाम्यम्, वशित्वम्, ईशित्वम्, कामावसायित्वञ्चेति।

यतो महानणुर्भवति सर्वभूतानामप्यदृश्यः सोऽणिमा। यतो लघुर्भवति सूर्य्यरश्मीनप्यालम्ब्य सूर्य्यलोकादिगमनसमर्थः स लघिमा। यतोऽल्पोऽपि नागनगादिमानो भवति स महिमा। यतो भूमिस्थस्या प्यङ्गुल्यग्रे गगनस्थादिवस्तुप्राप्तिः सा प्राप्तिः। प्राकाम्यमिच्छानभिघातः यत उदक इव भूमावुन्मज्जति निमज्जति च वशित्वम्। यतो भूत भौतिकेषु स्वातन्त्र्यम् ईशित्वम्। यतस्तेषु प्रभवस्थितिव्ययानामीष्टे, यत्र कामावसायित्वं, यतः सत्यसङ्कल्पता भवति, यथेश्वरसङ्कल्पमेव भूतभावादिति।

धर्मश्च प्रयत्नसंस्काररूपोऽधर्माभावादप्रतिघः। एतच्चतुष्टय- मन्यानपेक्षतयाऽनादित्वेन व्यवसितम्।

अत एव नेश्वरस्य कूटस्थताव्याघातः, जन्यधर्मानाश्रयत्वादिति बोध्यम्।

अयं संसारी जीवो हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपायानभिज्ञत्वात् आत्मनः सुखदुःखयोरकर्ता, अतः स्वर्गं नरकं वा परमेश्वरप्रेरितो गच्छेत्। अज्ञानां प्रवृत्तौ परप्रेरणाया हेतुत्वावधारणात् पश्वादिप्रवृत्तौ तथा दर्शनात्। अचेतनस्यापि चेतनाधिष्ठानेनैव व्यापाराच। अतएव भगवद्गीतायाम्—"मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः, सूयते सचराचरम्।
तथाऽस्मदहं वर्षं, निगृह्णाम्युत्सृजामि च॥"

इत्यनेन सर्वाधिष्ठानत्वं भगवतः श्रूयते। तथा च प्रेरकत्वेन कर्ता परमेश्वरोऽभ्युपगन्तव्य एवेति पातञ्जलाः।

अथार्हताः—

(शास्त्रवार्ता०)

अन्ये त्वभिदधत्यत्र, वीतरागस्य भावतः।
इत्थं प्रयोजनाभावात्, कर्तृत्वं युज्यते कथम्॥४॥

अन्वयः—अन्ये, तु, अत्र, इत्थम्, अभिदधति, वीतरागस्य, प्रयोजनाभावात्, भावतः, कर्तृत्वं, कथं, युज्यते।

(व्य०) अन्ये तु-जैनाः। अत्र-ईश्वरविचारे। इत्थं-परीक्षन्ते। वीतरागस्य—वैराग्यवत ईश्वरस्य पातञ्जलैरभ्युपगतस्य, प्रेरकत्वे प्रयोजनाभावात् भावतः—इच्छातः। कर्तृत्वं कथं युज्यते।

यो हि परप्रेरको दृष्टः स स्वप्रयोजनमिच्छन्निष्टः। ततोऽत्र व्यापिकायाः फलेच्छाया अभावाद् व्याप्यस्य परप्रेरकत्वस्याभावः सिद्ध्यति। व्यापकाभावस्य व्याप्याभावसाधकत्वनियमात्। निखिलेऽपि हि वह्न्यभावाधिकरणे जलह्रदादौ धूमाभावस्य दृष्टत्वात्।

यत्र यत्र परप्रेरकत्वं तत्र तत्र फलेच्छेति नियमात्। अनयोर्व्याप्यव्यापकभावाभ्युपगमात्।

अन्यथापि व्यभिचारिणः (व्यभिचारनिरूपकाधिकरणस्य) अयोगोलकादेः पक्षतायां निवेशोऽनैकान्तिकदोषोच्छेदापत्तिप्रसङ्गात्।

एवमप्यादिसर्गे तस्यैव (परमेश्वरस्यैव) स्वातन्त्र्यमस्त्विति चेन्न कृतकृत्यस्य वीतरागस्य तस्य प्रयोजनाभावादादिसर्गनिर्माणेऽप्यप्रवृत्तेः।

अथेदृशः परमेश्वरस्य स्वभाव एव यत्प्रयोजनाभावेऽप्यादिसर्गं स्वातन्त्र्येणैव करोति। अन्यदा त्वदृष्टापेक्षयैवेति चेन्न धर्मिणः परमेश्वरस्यासिद्धौ स्वभावकल्पनाया अप्रसिद्धेः अगुणस्य स्वभावस्यैवाप्रमाणत्वात्।

अथैवमपि विश्वहेतुतया धर्मि—(परमेश्वर) ग्राहकमानेन पूर्वोक्तस्वभाव एव भगवान् स्वीकरणीय इति चेत्, अत्रोच्यते—

ईश्वरमनपेक्ष्य कर्मादेर्जगज्जननस्वभावत्वे विभोः किञ्चिन्न बाध्यते। विभोस्तु स्वातन्त्र्येण, अन्यहेतुसापेक्षतया वा जगज्जननस्वभावत्वे वीतरागत्वव्याघातात्। कारणतया प्रकृतित्वप्रसङ्गाच्च कृतकृत्यत्वबाधनम्।

न च कारणत्वेऽपि परिणामित्वाभावान्न प्रकृतित्वम्। प्रयोजनाभावेन जन्येच्छाया अभावेऽपि नित्येच्छासत्त्वात् न वीतरागत्वव्याघातः। जन्येच्छाया एव रागपदार्थत्वात्। सर्गादौ रजःप्रभृत्युद्रेकोऽपि तत्र तत्कार्य्यकारित्वयैव गीयते इति न कूटस्थताहानिरिति वाच्यम्। अत्रोपाध्यायाः—

(कल्पलता)

जल्पता गिरिशसाधने गिरं, न्यायदर्शननिवेशपेशलाम्।
साङ्ख्य! सम्प्रति निजं कुलं त्वया, हन्त! हन्त! सकलं कलङ्कितम्॥२॥

अन्वयः—साङ्ख्य ! गिरिशसाधने, न्यायदर्शननिवेशपेशलां, गिरं, जल्पता, त्वया, हन्त, हन्त, सम्प्रति, निजं, सकलं, कुलं, कलङ्कितम् ।

(कल्पलतावतारिका)

साङ्ख्य !—कपिलानुयायिन् साङ्ख्याचार्य्य ! **गिरिशसाधने**—गिरौ पर्वते शेते इति गिरिशः शङ्करः, उपलक्षणतया परमेश्वरः, तत्साधनविधौ। **न्यायदर्शननिवेशपेशलाम्**—न्यायदर्शनसम्बन्धिशैली-विशेषनिवेशेन सुकोमलाम् । **गिरम्**—वाणीम् । **जल्पता**—निगदता । **त्वया**—भवता साङ्ख्येनेति यावत्। **हन्त! हन्त!**—अत्यन्तखेदसूच-नार्थमव्ययम् । **सम्प्रति**—नैयायिकरीत्यनुसरणकालेऽधुनेत्यर्थः । **सकलम्**—समस्तम्। **निजम्**—आत्मीयम्। **कुलम्**—वंशः। **कलङ्कितम्**—कलङ्कयुक्तं विहितम्। नैयायिकमतप्रवेशात्। येन ते शाश्वतिको विरो-धस्तन्मतप्रवेशो तवैव पराजय इति ध्वन्यते ।

यस्मादेवं कार्यजनकज्ञानादिसिद्धौ तदाश्रयतया बुद्धिरेव नित्या सिद्ध्येत्, नत्वीश्वरः बुद्धित्वस्यैव ज्ञानाद्याश्रयतावच्छेदकत्वात् । आत्मत्वमेव ज्ञानाद्याश्रयतावच्छेदकं कुतो नेति चेत्,—जन्यज्ञानादी-नामप्यात्माश्रिततया प्रकृत्यादिप्रक्रियाविलोपापत्तेरिति संक्षेपः ।

इति पातञ्जलमतखण्डनप्रकारः ।

अथेश्वरसिद्धौ नैयायिकानां पूर्वपक्षः—

नैयायिकास्तु—कार्य्यायोजनधृत्यादेः, पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च, साध्यो विश्वविदव्ययः ॥

इति कुसुमाञ्जलिपञ्चमस्तबकप्रथमकारिकोक्तप्रकारेण परमेश्वरं साधयन्ति ।

अन्वयार्थः—कार्य्यादीश्वरसिद्धिः–कारिकायां कार्य्यपदं भावप्रधान-निर्देशपरम्। तथा च कार्य्यात्—कार्य्यत्वहेतुकानुमानादीश्वरसिद्धिः। "कार्य्यं सकर्तृकम् कार्य्यत्वाद् घटवत्" इत्यनुमानादीश्वरसिद्धिः।

न च कार्य्यत्वस्य कृतिसाध्यत्वलक्षणस्य क्षित्यादावसिद्धिरिति वाच्यम्। कालवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वे सति प्रागभावप्रतियोगित्वे सति ध्वंसप्रतियोगित्वे सति वा सत्त्वस्य हेतुत्वात्।

पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वाच्च न कार्य्यस्य घटादेः सकर्तृकत्वसिद्ध्यांऽशतः सिद्धसाधनम्। न वा पक्षतावच्छेदकस्य हेतुत्वं दोषः। "कार्य्यत्वं साध्यसमानाधिकरणम्" इत्येवं सहचारग्रहेऽपि "कार्य्यं सकर्तृकम्" इति बुद्धेरभावाच्च।

अथ तथापि सकर्तृकत्वं यदि कर्तृसाहित्यमात्रम् तदाऽस्मदादिना सिद्धसाधनम्। यदि च कर्तृजन्यत्वम् तदा बाधोऽपि ज्ञानादेरेव जनकतया कर्तुर्जनकत्वाभावात् इति चेत्,—न, प्रत्यक्षजन्यत्वेच्छाजन्यत्वादिना साध्यतायां पूर्वोक्तसिद्धसाधनबाधादिदोषभावात्। अदृष्टाद्वाराजन्यत्वस्य विशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिकसमवायावच्छिन्नजन्यत्वस्य वा साध्यत्वाच्च नादृष्टजनकास्मदादिज्ञानजन्यत्वेन सिद्धसाधनम्।

अथात्र शरीरजन्यत्वमुपाधिः अङ्कुरादौ साध्यव्यापकतासन्देहे सन्दिग्धोपाधितासाम्राज्यात्, तदाहितव्यभिचारसंशयेनानुमानप्रतिरोधात्। लाघवाद् व्यभिचारज्ञानत्वेनैव व्याप्तिधीविरोधित्वात्। पक्षतत्समयोरपि व्यभिचारसंशयस्य दोषत्वादिति चेत्—न, प्रकृते ज्ञानत्वादिकार्य्यत्वाभ्यां हेतुहेतुमद्भावनिश्चयात्। लाघवतर्कावतारे तदुपाधिसंशयस्याविरोधित्वात्। अनुकूलतर्कानवतार एव सन्दिग्धोपाधे-

व्यभिचारसंशयाभावकत्वात्। अन्यथा पक्षेतरत्वोपाधिशङ्कया प्रसिद्धानुमानस्यानुच्छेदप्रसङ्गात् इति प्राचीनाचार्याः।

अन्ये तु द्रव्याणि ज्ञानेच्छाकृतिमन्ति, कार्य्यत्वात् कपालवत्। साध्यता विशेष्यतासम्बन्धेन, हेतुना च समवायेन। पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वाद् नांशतः सिद्धसाधनम्। न च ज्ञानेच्छाकृत्यात्मसाध्यव्यापकत्वात्। कार्य्यत्वात्मकसाधनाव्यापकतया "पर्वतो धूमवान् वह्नेरित्यत्र" "आर्द्रेन्धनसंयोग इवात्रापि" बहिरिन्द्रियाग्राह्यत्वमुपाधिः। तस्माच्च स्वभाववदवृत्तित्वेन हेतौ साध्याभाववद्वृत्तित्वात्मकव्यभिचारनिश्चयात्कुतोऽनुमितिरिति वाच्यम्,--अनुकूलतर्केण हेतोर्व्याप्यतानिर्णये तदनवकाशात्।

न च ज्ञानादित्रितयस्य मिलितस्य साध्यत्वेऽप्रयोजकत्वम्। मिलितत्वेनाहेतुत्वात्, प्रत्येकं साध्यत्वे ज्ञानेच्छावत्त्वेन साधने सर्गान्तरीयज्ञानादिना सिद्धसाधनमिति वाच्यम्। मिलितत्वेन साध्यत्वेऽपि कार्य्यकारणभावत्रयस्य प्रयोजकत्वात्। "सर्गाद्यकालीनं द्रव्यं ज्ञानवत् कार्य्यत्वात्, पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेः" इत्यप्याहुः।

केचित्तु—"क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्य्यत्वात्" इत्येवानुमानम्। प्रकृतविचारानुकूलविवादविषयत्वेन च क्षित्यादीनामनुगमः। सकर्तृकत्वं च प्रतिनियतकर्तृनिरूपितः सम्बन्धो व्यवहारसाक्षिकः घटादिदृष्टान्तदृष्टः, नित्यवर्गव्यावृत्त इति नानुपपत्तिरिति वदन्ति।

आयोजनादपीश्वरसिद्धिस्तथाहि—आयुज्यन्ते संयुज्यन्तेऽन्योन्यं द्रव्याण्यनेनेति व्युत्पत्तेरायोजनपदं कर्मपरम्। भावप्रधाननिर्देशाच्च कर्मत्वपरमवगन्तव्यम्। एवञ्च सर्गाद्यकालीनद्व्यणुककर्म प्रयत्नजन्यम्, कर्मत्वात् अस्मदादिशरीरकर्मवत्। तादृशकर्मजनकप्रयत्न-

शालितया अस्मदादौ याधात्तादृशप्रयत्नशालितया परमेश्वरसिद्धिरिति।

न च परमाणूनां नित्यत्वात्तेषु सर्गाद्यकालीनद्व्यणुककर्मजनकप्रयत्नशालितास्वीकारान्नेश्वरस्यातिरिक्तस्य सिद्धिरिति वाच्यम्— तेषां तादृश्यप्रयत्नवत्त्वस्वीकारे जडताहानिप्रसङ्गात्।

एवं धृतेरपीश्वरसिद्धिस्तथाहि—ब्रह्माण्डादिपतनाभावः पतनप्रतिबन्धकप्रयोज्यः धृतित्वात् उत्पतत्पतत्त्रिपतनाभाववत्, उत्पतत्पतत्त्रिसंयुक्ततृणादिधृतिवद् वा। एतेन (धारकप्रयत्नधृतत्वव्युत्पादनेन) इन्द्राग्नियमादिलोकपालप्रतिपादका आगमा अपि व्याख्याताः। तेषां तदधिष्ठानदेशानामीश्वरावेशेनैव पतनाभाववत्त्वात्। तथा च श्रुतिः "एतस्य चाक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिवी विधृते तिष्ठतः" इति प्रशासने दण्डभूतः प्रयत्नः, आवेशस्तच्छरीरावच्छिन्नप्रयत्नवत्त्वमेव। सर्वावेशनिबन्धन एव च सर्वतादात्म्यव्यवहार इति। आत्मैवेदं सर्वम् ब्रह्मैवेदं सर्वम् इत्यादिकम्।

कारिकायामादिपदेन नाशादपि परमेश्वरसिद्धिः, ब्रह्माण्डनाशः प्रयत्नजन्यः नाशत्वात्, पाट्यमानपटनाशवत्।

पदादपीश्वरसिद्धिः। पद्यते गम्यतेऽनेनेति पदं, व्यवहारः, ततः घटादिव्यवहारः स्वतन्त्रपुरुषप्रयोज्यः व्यवहारत्वात्, आधुनिककल्पित लिप्यादिव्यवहारवत् इत्यनुमानात्। न च पूर्वपूर्वकुलालादिनैवान्यथासिद्धिः, प्रलयेन तद्विच्छेदात्।

प्रत्ययतः प्रमाया अपीश्वरसिद्धिः। वेदजन्यप्रमा वक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानजन्या शाब्दप्रमात्वात, आधुनिकवाक्यजशाब्दप्रमावत्।

श्रुतेर्वेदादपीश्वरसिद्धिः। वेदोऽसंसारिपुरुषप्रणीतः, वेदत्वात्, इति व्यतिरेकिणः। न च परमते साध्याप्रसिद्धिः, आत्मत्वमसंसारिवृत्ति, जातित्वात्, इत्यनुमानेन पूर्वं साध्यसाधनात्।

(कल्पलता)

श्रुत्वैवं सकृदेनमीश्वरपरं, सांख्याऽऽक्षपादागमं,
लोको विस्मयमातनोति न गिरो, यावत् स्मरेदार्हतीः ।
किं तावद् बदरीफलेऽपि न मुहुर्माधुर्य्यमुन्नीयते,
यावत्पीनरसा रसाद् रसनया, द्राक्षा न साक्षात्कृता ॥३॥

अन्वयः—लोकः, एवम् ईश्वरपरम्, सांख्याक्षपादागमम्, सकृद् श्रुत्वा, (तावत्) विस्मयम्, आतनोति यावत् आर्हतीः, गिरः, न स्मरेत्, यावत् पीनरसा, द्राक्षा, रसात् रसनया, साक्षात्कृता, न (भवेत्), तावत्, बदरीफलेऽपि, मुहुः, माधुर्य्यम्, न, उन्नीयते, किम् ।

(कल्पलतावतारिका)

लोकः—दर्शनतत्त्वबुभुत्सुर्जनः । एवम्—पूर्वोक्तप्रकारेण । ईश्वरपरम्—परमेश्वरास्तित्वप्रतिपादकम् । सांख्याक्षपादागमम्—सांख्यनैयायिकसिद्धान्तनिरूपकशास्त्रम् । सकृत्—एकवारम्, श्रुत्वा—आकर्ण्य, (तावत्- तावत्कालपर्य्यन्तम्) । विस्मयम्—आश्चर्य्यम् । आतनोति—विस्तारयति, करोति, समधिगच्छति वा धातूनामुपसर्गयोगादन्यथाऽपि वाऽनेकार्थबोधकत्वात् । तादृशी तदीयप्रतिपादनशैलीति भावः । यावत्—यावत्कालपर्य्यन्तम् । आर्हतीः—'जिनसम्बन्धिनीः, जिनप्रतिपादिता इति यावत् । गिरः—सिद्धान्ततत्त्वप्रतिपादनपरा वाचः । न—नहि । स्मरेत्—स्मरणपथे समानयेत् । एतदेव दृष्टान्तेन समर्थयति किं ताव दित्यादिना । यावत्—यावत्कालपर्य्यन्तम् पीनरसा—परिपुष्टरसवती । द्राक्षा—गोस्तनी स्वनामप्रसिद्धमाधुर्य्यपरिपूर्णफलविशेषो वा । रसात्—अनुरागात् । रसनया—रसनेन्द्रियेण, जिह्वयेति यावत् । साक्षात्कृता—

कर्त्रजन्यं शरीराजन्यत्वात् आकाशवत् इति विरुद्धसाध्यसाधकहेत्वात्मकसत्प्रतिपक्षदोषेणानुमानस्याप्रमाणत्वात् व्यभिचारशङ्कानिवर्तकानुकूलतर्करहितत्वरूपमप्रयोजकत्वमपि तुल्यमेव। ईश्वरसाधकानुमानस्थलेऽप्यनुकूलतर्काभावात्। कर्तृत्वेन कार्य्यत्वेन कार्य्यकारणभाव एव तत्रानुकूलतर्क इति तु नाशङ्क्यम्, कुलालकृतिसत्त्वे घटः कुलालकृत्यभावे घटाभाव इति विशिष्यैवान्वयव्यतिरेकग्रहेण विशिष्यैव कुलालत्वेन घटत्वेन कार्य्यकारणभावग्रहात्, सामान्यतः कृतित्वेन कार्य्यकारणभावग्रहे मानाभावात्। न च विशेषतः कार्य्यकारणभावग्रहेऽपि यद्विशेषयोः कार्य्यकारणभावस्तत्सामान्ययोरपीति न्याय एव सामान्यतः कृतित्वेन कार्य्यत्वेन कार्य्यकारणभावग्रहे मानमिति वाच्यम्। उक्तन्याये मानाभावेन सामान्यतः कार्य्यकारणभावग्रहे मानाभावात्। न च कुलालकृतित्वेन घटत्वेन कार्य्यकारणभावस्वीकारेऽपि प्रलयात्परं सर्गाद्यकालीनो घटः कुलालकृतिजन्यो घटत्वात् इत्यनुमानेन सर्गाद्यकालीनकुलालात्मकेश्वरसिद्धिः। ईश्वरस्य कुलालत्वापत्तिस्तु नमः कुलालेभ्यो नमः कर्मकारेभ्यः" इति श्रुत्येष्टैवेतिवाच्यम्। प्रलये मानाभावात्। तथा चोक्तमुपाध्यायपादैः—तथाहीत्यादिना कार्य्येण तत्साधने आद्यानुमाने नानुकूलस्तर्कः। तत्तत्पुरुषीयपटाद्यर्थिप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति तत्तत्पुरुषीयपटादिमत्त्वप्रकारकोपादानप्रत्यक्षत्वेन हेतुत्वावश्यकत्वात् प्रत्यक्षत्वेन कार्य्यसामान्यहेतुत्वे मानाभावात्। चिकीर्षाया अपि प्रवृत्तावेव हेतुत्वात् कृतेरपि विलक्षणकृतित्वेनैव घटत्वपटत्वाद्यवच्छिन्नहेतुत्वात्। तथा चोक्तं हेमसूरिभिः—

सर्वभावेषु कर्तृत्वं, ज्ञातृत्वं यदि सम्मतम्।
मतं नः सन्ति सर्वज्ञा, मुक्ताः कायभृतोऽपि हि॥

श्रुत्वैव चैतत् "अहं ज्ञः स्वात्मा नित्यं ते तत्र विनिश्चयः" इति माध्यमिकाचार्येणैव व्यवस्थापितमेव । अत एव—

* सनाथोऽस्मि क्षुद्रेष्वपि भुवननाथस्य भुवने,
नियोगाद् भूतानां मितवसनदेशाभिनिलयम् ।
सखे! कैषा भ्रान्तिः सततमपि मीमांसनजुषां,
व्यवस्थातः कार्ये जगति जगदीशापरिचयः ॥

इति परैरपि प्रतिवचनाद्व्याख्याताः—

स्थितोऽहं नित्यं भवनियमसंरुद्धवसतिः,
स्वभावाद् भूतानां मितवसनदेशाभिनिलये ।
सखे! कैषा भ्रान्तिः सततमपि तर्कव्यसनिनां,
मुधा मत्कार्यत्वे जगति जगदीशस्य कथितः ॥

---

* (टिप्पणी)—अयमः श्लोक ईश्वरस्य जगत्कर्तृत्वमङ्गीकुर्वताम् । ईश्वरानङ्गीकर्तॄन्मीमांसकान् प्रत्युक्तिः । सखे—मीमांसक, ईश्वरस्य जगत्कर्तृत्वमनङ्गीकुर्वाणाः । भुवने—जगति । भुवननाथस्य—जगदीशस्य । नियोगात्—आज्ञावशतः । भूतानाम् (मध्ये)—प्राणिनामपि मध्ये । क्षुद्रेष्वपि—कीटपतङ्गादिक्षुद्रजन्तुष्वपि । मितवसनदेशाभिनिलयम्—परिमितवस्त्रावस्थानालयमात्रो । समाख्यातः—सम्यक् कथित । सिद्धान्तमितिशेषः । मीमांसनजुषाम्—विचारतत्पराणां मीमांसकानाम्, भवतामिति यावत् । सततम्—सन्ततम् । अपि कैषा भ्रान्तिः का ?—कैषं भ्रमचक्रता ! यत् व्यवस्थातः—व्यवस्थितिपूर्वकम् । कार्ये जगति—क्रियात्मके विश्वे । जगदीशापरिचयः—जगदीश्वरस्यानङ्गीकरणम् । क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं, कार्यत्वात्, घटवत्, इत्यनुमानेन क्षित्यङ्कुरादेर्निर्मातुः परमेश्वरस्य सिद्धावपि तदनङ्गीकारः मुधैव मीमांसाभिमतानां भवतामनुपपन्न इति ।

सिद्धिः, ब्रह्माण्डधृतेरप्यदृष्टप्रयुक्तत्वात् । तथाचोक्तम्—

निरालम्बा निराधारा, विश्वाधारा वसुन्धरा ।
यच्चावतिष्ठते तत्र, धर्मादन्यद् न कारणम् ॥

युक्तमेवैतत्, ईश्वरस्य व्यापकत्वेन समरेऽपि शरपाताऽनापत्तेः । पतनाभावावच्छिन्नेश्वरप्रयत्नस्य तथात्वे तादृशज्ञानेच्छाभ्यां विना विनिगमनाविरहात्, क्लृप्तजातीयस्यादृष्टस्यैव ब्रह्माण्डधारकत्वकल्पनौचित्यात् । नचाऽऽत्माऽविभुत्ववादिनः (कायप्रमाणात्मवादिनः) जैनस्य सम्बन्धानुपपत्तिः असम्बद्धस्यापि तत्कार्य्यजननशक्तस्य तत्कार्य्यकारित्वात् अयस्कान्तस्याऽसम्बद्धस्यापि लोहाकर्षकत्वात्। प्रयत्नस्य तु विलक्षणप्रयत्नत्वेन पतनप्रतिबन्धकसंयोगविशेष एव हेतुत्वमिति ।

ब्रह्माण्डनाशकतयाऽपि नेश्वरसिद्धिः। यदि प्रलयः स्यात्तदा तज्जनकप्रयत्नशालितयेश्वरसिद्धिः सम्भाव्येत, स एव नास्ति प्रलयानभ्युपगमात् । कुतः पुनरीश्वरसिद्धिः । कुतः प्रलयानभ्युपगम इति चेत्, अहोरात्रस्याऽहोरात्रपूर्वकत्वव्याप्यत्वात् । यदि प्रलयः स्यात् तदाऽनायाससिद्धो मोक्षः, किं पुनर्ब्रह्मचर्य्यादिक्लेशानुभवेन ।

एतेन "आद्यव्यवहारादीश्वरसिद्धिः, प्रतिसर्गं मन्वादीनां बहूनां व्यवहारप्रवर्तकानां कल्पने गौरवादेकस्यैव भगवतः सिद्धेः" इत्यपास्तम्। सर्गादेरेवाऽसिद्धेः । इदानीमिव सर्वदा पूर्वपूर्वव्यवहारेणैवोत्तरोत्तरव्यवहारोपपत्तेः । यदि तु सर्गादिः स्वीक्रियते तदा तदानीं प्रयोज्यप्रयोजकवृद्धयोरभावात् कथं व्यवहारस्तदीयव्यवहारदर्शनेनैव च तटस्थबालकानां सङ्केतग्रहस्य व्यवस्थितत्वात्, व्यवहारस्यैव च शक्तिग्राहकशिरोमणित्वात् ।

अथ यथा मायावी सूत्रसंचाराधिष्ठितदारुपुत्रकं "घटमानय"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] प्रमात्वसम्भवात् । [illegible] कुलालादिशरीरं परिगृह्य घटादि-सम्प्रदायप्रवर्तकः, अत एव श्रुतिः—

"कुलालेभ्यो नमः, कर्मारेभ्यः" इत्यादीति चेत्,

अत्रोपाध्यायाः—

ईश्वरस्यादृष्टाभावेन प्रयोज्यादिशरीरपरिग्रहस्यैवायुक्तत्वम् । अन्यदीयमदृष्टमादाय शरीरपरिग्रह इति चेत्–अन्यादृष्टेनाऽन्यस्य शरीरपरिग्रहे चैत्रादृष्टाकृष्टं शरीरं मैत्रोऽपि परिगृह्णीयात् । प्राण्यदृष्टेन घटादिवत् तच्छरीरोत्पत्तिः तत्परिग्रहस्तु भगवतस्तदावेश एवेति न दोष इति चेत् न, घटादावतथात्वेऽपि तदीयशरीरे तदीयादृष्टत्वेनैव हेतुत्वात्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् ।

तस्माद् मायाविवत् समयग्राहकत्वम् घटादिसम्प्रदायप्रवर्तकत्वञ्च पराभिमतेश्वरस्य मायाविनामेव विद्याधरविशेषस्य व्यञ्जयति, पितुरिव पित्रादेर्युगादौ युगादीशस्य जगतः शिक्षया तु तथात्वं युक्तिमत्, स्वभावत एव तीर्थकृतां परोपकारित्वात्, अत एव "कुलालेभ्यो नमः" इत्याद्या श्रुतिः सङ्गच्छत इति युक्तमुत्पश्यामः ।

प्रत्ययादिनेति कारिकोक्तेन हेतुनाऽपि वेदप्रामाण्यवादिनामाप्त-तद्वक्तृसिद्धावपि नेश्वरस्य सिद्धिः, अतस्तदुपन्यासेनालम् । एतेन कार्य्यादिपश्नानामर्थान्तरमपि प्रयासमात्रम् । "जन्यतत्प्रमासामान्ये तत्प्रमात्वेन गुणतया हेतुत्वात् आद्यप्रमाजनकप्रमाश्रयतयेश्वरसिद्धिः" इति तु वचनं युक्तिशून्यम् । घटत्वादिमद् वृत्तिविशेष्यतया तत्र घट-त्वादिविषयतत्वेनैव हेतुतयासंस्कारेणैव घटत्वादिसम्बन्धहेतुतयैव वा नैयायिकस्यापि निर्वाहात् । अस्माकमार्हतानान्तु सम्यग्दर्शनस्यैव गुणत्वात् ।

संख्याविशेषादपि नेश्वरसिद्धिः, द्व्यणुकपरिमाणजनिकायां संख्यायां नैयायिकस्यापि लौकिकापेक्षाबुद्धेरेव कारणत्वात् ममाऽऽर्ह-तस्यापि लौकिकापेक्षाबुद्धेरेव तथाव्यवहारनिमित्तत्वात् तज्जन्याति-रिक्तसंख्यासिद्धिसम्भवात् । परिमाणेऽपि संघातभेदादिकृतद्रव्यपरि-माणविशेषरूपे संख्याया अहेतुत्वाच्च । द्विकपालात् त्रिकपालघटपरि-माणोत्कर्षस्य दलोत्कर्षादेवोपपत्तेः । अत्रत्यमधिकं तत्त्वमार्हतवार्ताया-माकलनीयम् ।

तस्मादीश्वरसिद्धौ न किमपि साधीयः प्रमाणम्, न वा तदभ्यु-पगमेनापि तस्य सर्वज्ञत्वम् उपादानमात्रसिद्धावप्यतिरिक्तज्ञानासिद्धेः, कारणाभावात् मानाभावाच्चेति नैयायिकानुपहसन्त्युपाध्यायाः— सन्तुष्येति—

(कल्पलता)

सन्तुष्य नैयायिकमुख्य ! तस्मादस्माकमेवाश्रयपक्षमग्रयम् ।
बबोधकैरीश्वरकर्तृताया मनोरथं सम्प्रति पूरयामः ॥४॥

अन्वयः—नैयायिकमुख्य ! तस्मात्, सन्तुष्य, अग्रयम्, अस्माकम्,

एव, पक्षम्, आश्रय, सम्प्रति, तत्र, ईश्वरकर्तृतायाः, मनोरथम्, उच्चैः, पूरयामः ।

(कल्पलतावतारिका)

नैयायिकमुख्य !—मुखं वदनमिव प्रधानत्वान्मुख्यः प्रथमः, नैयायिकेषु मुख्यो नैयायिकमुख्यस्तदामन्त्रणे तथा, नैयायिकप्रवरेति यावत् । उदयनाचार्य्येतितात्पर्य्यम् । तदीयकारिकाया एव विवरणपूर्वकखण्डनात् । **तस्मात्**—स्वपक्षस्य खण्डितत्वात् । **सन्तुष्य**—सन्तोषमाधाय । सन्तोषं धेहीति वा । सन्तुष्येति पदस्य क्त्वाप्रत्ययेन पञ्चमीमध्यमपुरुषैकवचनात्मकप्रत्ययेन चोभयथासाधनात् । **अग्र्यम्**—अग्रगण्यम्, श्रेष्ठमित्यर्थः । **अस्माकम्**—आर्हतानाम् । **एव**—अवधारणार्थकमव्ययम् । तेनान्यस्य व्यवच्छेदः । **पक्षम्**—मतम्, सिद्धान्तवादं वा । **आश्रय**—अवलम्बस्व । **सम्प्रति**—अधुना । **तत्र**—नैयायिकस्य **ईश्वरकर्तृतायाः**—ईश्वरकर्तृकजगत्कर्तृत्ववादस्य । **मनोरथम्**—अभिलाषम् । **उच्चैः**—सातिशयम् । **पूरयामः**—परिपूर्णीकुर्मः । ईश्वरकर्तृत्वविषयकनैयायिकाभिलाषस्य वक्ष्यमाणरीत्या प्रपूरणात् । अत्र "तस्मादस्मा" इत्यत्र च्छेकानुप्रासो नामालङ्कारः । ईश्वरकर्तृत्ववादस्वीकारेऽपि भवेदस्माकं पक्षस्यैव संसिद्धिर्न तु नैयायिकपक्षस्येति वस्तु ध्वन्यते ।

(कल्पलता)

नयैः परानप्यनुकूलवृत्तौ, प्रवर्तयत्येव जिनो विनोदे ।
उक्तानुवादेन पिता हितात् किं बालस्य नालस्यमपाकरोति ॥५॥

अन्वयः—जिनः, नयैः, परान्, अपि, अनुकूलवृत्तौ, विनोदे, प्रवर्तयति, एव, पिता, हितात्, उक्तानुवादेन, बालस्य, आलस्यम्, न, अपाकरोति, किम् ।

(कल्पलतावतारिका)

जिनः-भगवान् अर्हन्। नयैः-द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकप्रसिद्धनयैः, नीतिभिश्च। परान्-अन्यान् किं पुनः स्वानितिभावः। अपि-अपिः समुच्चयार्थकः। "अपि सम्भावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये" इति मेदिनी। अनुकूलवृत्तौ-अनुकूला धर्मादिसहकारिणी वृत्तिर्वर्तनं व्यवहारो वा यस्मिन् सोऽनुकूलवृत्तिस्तस्मिँस्तथा। विनोदे-आनन्दे। प्रवर्तयति-प्रेरयति। एव-अवधारणार्थकमव्ययम्। वास्तविकानन्दप्रवर्तको भगवान् जिन इति भावः। विषयमिमं दृष्टान्तेन समर्थति—उक्तानुवादेन पितेत्यादिना। पिता-जनकः। हितात्-कल्याणात्, हितबुद्धयेति यावत्। उक्तानुवादेन-उक्तस्य बालेन कथितस्य अनुवादः पुनरुच्चारणम्, उक्तानुवादस्तेन तथा। बालस्य-बालकस्य स्वपुत्रस्येति यावत्। आलस्यम्-विनोदादिप्रतिबन्धकमलसभावं मन्दतामिति यावत्, विच्छायत्वमिति हृदयम्। न-नहि। अपाकरोति-दूरीकरोति। किम्-प्रश्नार्थकमव्ययम्। 'किं कुत्सायां वितर्के च निषेधप्रश्नयोरपी'-तिमेदनी। यथा कश्चित्पिता बालकप्रसन्नताहेतवे तदुदीरितमेव वचः पुनः पुनरुच्चारयति तथैव जिनः परदर्शनिप्रसन्नताहेतवे तत्स्वीकृतमीश्वरकर्तृत्ववादं स्वीकरोति वक्ष्यमाणप्रकारेण स्वमतसंरक्षकमिति भावः। तदिदमाह—ततश्चेश्वरेत्यादि—

(शास्त्रवार्ता०)

ततश्चेश्वरकर्तृत्ववादोऽयं युज्यते परम्।
सम्यग्न्यायाविरोधेन, यथाहुः शुद्धबुद्धयः ॥१०॥

अन्वयः—ततश्च, अयम्, ईश्वरकर्तृत्ववादः, परं सम्यग्, न्यायाविरोधेन, युज्यते, यथा, शुद्धबुद्धयः, आहुः।

(शास्त्रवार्ता०)

शास्त्रकारा महात्मानः, प्रायो वीतस्पृहा भवे ।
सत्त्वार्थसम्प्रवृत्ताश्च, कथं तेऽयुक्तभाषिणः ॥१५॥

अन्वयः—शास्त्रकाराः, प्रायः, महात्मानः, भवे, वीतस्पृहाः, सत्त्वार्थसम्प्रवृत्ताश्च, कथं, ते, अयुक्तभाषिणः ।

(अव०) शास्त्रकाराः—दर्शनप्रवर्तकाः कपिलप्रमुखाः । प्रायः—बहुशः चार्वाकादीन् पापप्रवर्तकान् त्यक्त्वा । महात्मानः—धर्मवृत्तितः प्रकृष्टपुरुषाः । भवे—संसारे । वीतस्पृहाः—गताभिलाषाः, न तु धनमानप्रसिद्धिलिप्सान्विताः । सत्त्वार्थसम्प्रवृत्ताश्च—यथानुभवं परहितार्थप्रवृत्ताश्च । ततः कथं ते अयुक्तभाषिणः—ज्ञात्वा विरुद्धार्थोपदेशिनः । परहितार्थप्रवृत्तेर्विरुद्धार्थोपदेशित्वस्य च परस्परं न साहचर्यं जलज्वलनवत् । एवमीश्वरविचारणायामुपाध्याया उपसंहरन्ति इत्येवमिति-
(कल्पलता)

इत्येवं पटुरीश्वरव्यतिकरः, सत्तर्कसम्पर्कभाग्,
येषां विस्मितमातनोति न मनस्ते नाम वामाशयाः ।
अस्माकं तु स एक एव शरणं, देवाधिदेवः सुखा-
म्भोधौ यस्य भवन्ति बिन्दव इव, स्वःसद्मनां सम्पदः ॥६॥

अन्वयः—इत्येवम्, सत्तर्कसम्पर्कभाक्, पटुः, ईश्वरव्यतिकरः, येषां, मनः, विस्मितम्, न, आतनोति, नाम, ते, वामाशयाः, तु. अस्माकम्, एकः, सः, देवाधिदेवः, एव, शरणम्, यस्य, सुखाम्भोधौ, बिन्दवः इव, स्वःसद्मनां, सम्पदः, भवन्ति ।

(कल्पलतावतारिका)

इत्येवम्—पूर्वकथितप्रकारेण । सत्तर्कसम्पर्कभाक्—सन्तः समीचीनाश्च ते तर्का ऊहाः सत्तर्कास्तैः सम्पर्कः सम्बन्धः सत्तर्कसम्पर्कस्तं भजते सेवते इति सत्तर्कसम्पर्कभाक् । पटुः—समर्थः । ईश्वरव्यतिकरः—परमेश्वरसम्बन्धः, वीतरागतीर्थङ्करात्मपरमेश्वरसाधनं वा । येषाम्—यादृशानां जनानाम् । मनः—चित्तम् । विस्मितम्—विस्मययुक्तम् आश्चर्यरसाविष्टमिति यावत् । न—नहि । तनोति—करोति, सम्पादयतीति यावत् । नाम—कोमलामन्त्रणे । ते—तादृशाः । वामाशयाः—कुटिलाभिप्रायाः, दुष्टचेतस इति यावत् । तु—किन्तु । अस्माकम्—आर्हतानाम्, वीतरागप्रणीताऽऽगमपरिपक्वबुद्धीनां जैनानामिति यावत् । एकः—अद्वितीयः । सः—प्रसिद्धः । देवाधिदेवः—देवश्रेष्ठः, जिनेश्वर इति यावत् । एव—अवधारणार्थकमव्ययम् । शरणम्—रक्षकः, गतिरिति यावत् । "शरणं गृहरक्षित्रोर्वधरक्षणयोरपि" इति मेदिनी । यस्य—तीर्थकृतो जिनेश्वरस्य । सुखाम्भोधौ—सम्मदसिन्धौ । बिन्दवः—पृषतः । इव—यथा । स्वःसद्मनाम्—स्वः-स्वर्गः सद्म-गृहं येषान्ते स्वःसद्मानस्तेषान्तथा देवानामित्यर्थः । सम्पदः—सम्पत्तयः । भवन्ति—जायन्ते । देवानां सम्पदो यदीयशर्मसमुद्रबिन्दुतुल्या इति भावः । उपमालङ्कारः ।

॥ समाप्ता च नैयायिकवार्ता ॥



अथ वार्तान्तरमाह—प्रधानोद्भवमित्यादि—

ननाऽसदेव सदुत्पत्तिकं कार्य्यमुत्पद्यमानं स्यादित्याशङ्कायाम्, सत्कार्य्यमार्गे प्रमाणानुसरणेन न किमपि प्रयोजनमिति वाच्यम्। असत् कार्य्यस्यानुत्पत्तेरित्याह--

असतः शशविषाणादिरूपस्य कार्य्यस्य सत्त्वं केनापि कर्तुमशक्यम्, अतो हेतोः सत एव कार्य्यस्य सत्कारणानुसारणीयम्, तद्धर्मत्वात्तस्य। लोकेऽपि तिलेषु सत एव तैलस्य निष्पीडनेन सम्पादनं दृश्यते यथा न तथाऽसतः कार्य्यस्य कुत्रचित् केनापि सम्पादनमिति। न च सत्कार्य्यवादे विद्यमानप्रागभावप्रतियोगित्वरूपस्याऽसत्त्वस्य विद्यमानत्वरूपस्य सत्त्वस्य च न विरोध इतिवाच्यम्। अविद्यमानत्वस्यैव लाघवादसत्त्वरूपतास्वीकारात् तस्यैवानुगताऽसत्त्वव्यवहारप्रयोजकत्वात्। एवं कार्य्यमात्रं प्रति तदुपादानापेक्षणादपि कार्य्यं सदिति मन्तव्यम्। अन्यथा शालिबीजकोद्रवबीजयोरुभयत्रापि शालिफलात्मककार्य्यायोगस्याऽविशेषेऽपि शालिफलार्थिनः शालिबीजस्यैवोपादानम् न तु कोद्रवबीजादेरिति प्रतिनियमानुपपत्तिः स्यात्। एवं सर्वस्मात् सर्वस्यानुत्पत्तेश्चापि कार्यं सदिति स्वीकार्य्यम्, असतः कार्य्यस्य सम्पादनेऽसम्बद्धत्वाविशेषेण सर्वं सर्वस्माद् भवेत्, तस्मादुत्पत्तेः प्राक् कार्य्यं कारणेन सह सम्बद्धमवसेयम्। तथा चाहुरभियुक्ताः—

असत्वाद् नास्ति सम्बन्धः, कारणैः सत्त्वसङ्गिभिः।
असम्बद्धेषु, चोत्पत्ति-मिच्छतो न व्यवस्थितिः॥

एवमशक्तस्य वस्तुनः कारणत्वस्वीकारे पूर्ववदतिप्रसङ्गाच्छक्तस्य तस्य कारणत्वं वक्तव्यम्। शक्तत्वञ्च शक्तिमत्वम्, शक्तिश्च सार्वत्रिकी स्वीकर्तुं शक्या, तथैवातिप्रसङ्गात्। एवञ्च क्वचिदेव

शक्तिः स्वीकरणीयतामर्हति । ततश्च कार्य्येऽसति कारणस्य शक्तिः कथं नियता स्यात् । असतो वस्तुनो विषयत्वायोगात्, तस्मात् कार्य्यं प्रागपि सदेव । एवं कारणतारतम्यादपि सदेव कार्य्यमित्यभ्युपगन्तव्यम् । कारणरूपेभ्योऽवयवेभ्योऽवयविरूपं कार्य्यं न भिद्यते तथाप्रतीतेरभावात् । " कपालं घटीभूतम् तन्तुः पटीभूतः सुवर्णं कुण्डलीभूतम् " इति तयोरभेदप्रतीतेश्च । तस्माद् महदादिकार्य्यस्योत्पत्तेः प्रागपि यत्र सत्त्वं सा प्रकृतिरवगन्तव्येति ।

एतत्सङ्ग्रहाकत्वेनोक्तं यथा—"असदकरणादुपादान-ग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥६॥
(साङ्ख्यकारिका)

ततश्च प्रकृतेः सकाशाद् बुद्ध्यपरनामकं महत्तत्त्वमुत्पद्यते । यतश्चैतन्यं स्वभावतो विषयावच्छिन्नं प्रकृत्यधीनं वा स्वीकरणीयतामर्हति । विषयावच्छिन्नत्वेऽनिर्मोक्षप्रसङ्गः, प्रकृत्यधीनत्वेऽपि तस्यानित्यतया तद्दोषानुद्धार एवेत्यतो यत्सम्बद्धेन्द्रियस्य विषयचैतन्यावच्छेदनियामकत्वम्, यद्व्यापाराच्च सुषुप्ताविन्द्रियव्यापारविरतावपि श्वास-प्रश्वासादि-तन्महत्तत्त्वम् । तस्य धर्मा ज्ञानाऽज्ञानै-श्वर्य्यानैश्वर्य्य-वैराग्यावैराग्य-धर्माधर्मरूपा अष्टौ, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्ना अपि, भावनायास्तैरनङ्गीकारात् । अनुभवस्यैव स्मृतिपर्यन्तं सूक्ष्मरूपतयाऽवस्थानात् । तस्य ज्ञानरूपपरिणामेन सम्बद्धो विषयः पुरुषस्य स्वरूपतिरोधायकः । एवञ्च बुद्धितत्त्वनाशादेव पुरुषस्य विषयावच्छेदाभावाद् मोक्षः । भेदाग्रहाच्च चेतनोऽहं करोमीत्यध्यवसायः । अचेतनप्रकृतिकार्य्याया बुद्धेश्चैतन्यानुपपत्त्यैव स्वाभाविकचैतन्यरूपस्य पुरुषस्य सिद्धिः । आलोचनं व्यापार इन्द्रियाणाम्, विकल्पस्तु

न स्यात् । ब्राह्मणशरीरावच्छिन्नप्राणजनकमनःसंयोगविशेषनाशानुकूलो व्यापार एव ब्रह्महत्येति चेत् न, तादृशमनःसंयोगस्य स्वत एव नश्वरत्वात्, साक्षाद्घातानुपपत्तेश्च । ब्राह्मणशरीरावच्छिन्नदुःखविशेषानुकूलव्यापार एव ब्रह्महत्येति चेत्, शरीराच्छरीरिणः सर्वथा भेदे तच्छेदादिना तस्य दुःखमपि कथम्? परम्परासम्बन्धेन तदात्मसम्बन्धादिति चेत्, साक्षादेव कथं न तत्सम्बन्धः? शरीरावयवच्छेदादात्मावयवच्छेद एव हि शरीरात्पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिरुपपद्यते, नान्यथा, प्राणक्रियाया अपि तन्मात्रोपग्रहं विनाऽभावात् ।

अथैवं छिन्नावयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः स्यादिति चेत्, न, यस्माच्छरीरावयवः पृथग्भूतस्तस्मिन् शरीर एवच्छिन्नावयवस्य पश्चात् प्रवेशात्, छिन्ने हस्तादौ कम्पादितल्लिङ्गादर्शनादित्थं कल्पनात् । न चैकत्वे आत्मनो विभागाभावाच्छेदाभाव इति वाच्यम् । शरीरद्वारेण तस्यापि सविभागत्वात् । अन्यथा सावयवशरीरव्यापिता तस्य न स्यात् । छिन्नाच्छिन्नयोः कथं पश्चात् संघटनमिति चेत्, न, एकान्तेनाच्छिन्नत्वात्, पद्मनालतन्तुवदच्छेदेऽपि च्छेदाभ्युपगमात् । संघटनमपि तथाभूतादृष्टवशादविरुद्धमेव । हन्त! एवं शरीरदाहेऽप्यात्मदाहः स्यादिति चेत्, न, क्षीरनीरयोरिवाभिन्नत्वेऽपि भिन्नलक्षणत्वेन तद्दोषाभावात् । तस्माद्देहात्मन एकान्तपृथक्त्वे हिंसाद्यभावः, तदभावे च निमित्तसन्निधानाभावात् कथं शुभाशुभबन्ध इति । शुभाशुभबन्धादिकं विना देवनारकादिरूपः संसारो मुक्तिश्चास्य नोपपद्यते । मुक्तेः कर्मक्षयरूपत्वात् । मुक्त्यभावे च सर्वमेव यमनियमादियोगानुष्ठानं व्यर्थं स्यात् । कः खलु फलमनभिलषन्नेव दुष्करक्लेशैरात्मानमवसादयेत् ।

स्यादेतद्—आत्मा न बध्यते, नापि कदाचन मुच्यते, तस्य च

सर्वदाबद्धत्वात् । किन्तु प्रकृतिरेव स्वपरिणामलक्षणेन बन्धेन बध्यते तेनैवं मुच्यते च । प्रकृतावेव बन्धविश्लेषौ । पुरुषे तु बन्धमोक्षावपचर्येते, भृत्यगताविव जयपराजयौ स्वामिनि । तदुक्तम्—

तस्माद् न बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरति कश्चित् ।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥१॥

इतिचेदत्रोच्यते—सर्वथैकस्वभावायाः सर्वथा नित्यायाश्च प्रकृतेर्निवृत्तिक्रियाया अभावात् सन्न्यायाद् बन्धमोक्षौ न प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातिरूपो हि व्यापारः पुरुषस्यैवेति तस्यैव मोक्ष उचितो न तु प्रकृतेः, तस्याः प्रवृत्त्येकरूपत्वात्, पुरुषार्थमचेतनत्वेन व्यापारायोगाच्च ।

अपि च प्रकृतेर्मुक्तौ पुरुषस्य स्वरूपावस्थाने तस्याः साधारणत्वादेकमुक्तौ संसारोच्छेदः, प्रकृतिवदात्मनोऽपि सर्वगतत्वेन "एकावच्छेदेन मुक्तिर्नान्यावच्छेदेन" इत्यपि वक्तुमशक्यत्वात्, तद्बुद्ध्यवच्छेदेन मुक्तत्वम्, नान्यबुद्ध्यवच्छेदेन इत्यपि वक्तुमशक्यम् बुद्धेः क्षीणत्वात्, बुद्धियोगेन पुरुषस्य संसारित्वे तस्यैव मोक्षप्रसङ्गाच्च ।

"प्रकृतिवियोगो मोक्षः" इति वचनात् प्रकृतेर्मोक्षः कथं भवेत् ? प्रकृतिस्वरूपनिवृत्तिप्रसङ्गात्, पुरुषे तु प्रकृतिनिवृत्तिद्वारा तन्निवृत्तिर्युज्यते, न तु स्वस्मिन् स्वनिवृत्तिः संभवति, घटे घटनिवृत्त्यदर्शनात् अप्रसक्तस्य प्रतिषेधभावात्, प्रकृतेर्मोक्षे तन्त्रविरोधाच्च । इत्यश्लोकप्रकारेणोपपादिता पुरुषस्य मुक्तिः कथमपि न संघटत इति हेतोः साङ्ख्योक्तं सर्वमयुक्तम् ।

आर्हताः पुनः साङ्ख्यवादेऽपि पुरुषस्य प्रकृतिवियोगलक्षणा मुक्तिमिच्छन्ति प्रकृतिमपि समीचीनतर्कात् कर्मप्रकृतिमेवेच्छन्ति, बुद्ध्यादीनां निमित्तत्वात्, तत्समन्वयश्च कथञ्चिदात्मादावेवोपपद्यते, सर्वथा

[illegible]

[illegible] इति चेत्, [illegible] पश्चाद्भावात्। [illegible] व्यञ्जक-स्याऽभावाद् न प्रागुपलब्धिरिति चेत्, तर्हि तस्यैव प्रागसत्त्वेऽसत्का-र्यापातः, प्राक् सत्त्वेनाऽविर्भूतो व्यञ्जक इति चेत् न, आविर्भावस्यापि सदसद्विकल्पग्रासात्। स्थूलरूपावच्छिन्नस्य प्रागसत्त्वाऽनुपलब्धिः, धर्मधर्मिणोः सौक्ष्म्यस्थौल्ययोश्चैकत्वान्नानवस्थेति चेत् तर्हि सूक्ष्मरूपा-वच्छिन्नस्याऽहेतुकत्वेऽतिप्रसङ्गः, प्रकृतिमात्रहेतुकत्वे च स्थूलतादशा-यामपि तदापत्तिरिति न किञ्चिदेतत्। तस्माच्छबलस्यैव वस्तुनः कथ-ञ्चित् सत्त्वमसत्त्वञ्चाप्युचितम्, तथा च बुद्ध्यादीनामहन्त्वसामा-नाधिकरण्येनाध्यवसीयमानत्वात् तद्धर्मतया तत्रैव समन्वयः कर्म-प्रकृतिस्तु तत्र निमित्तमात्रमिति प्रतिपत्तव्यम्।

ननु रूपादिसन्निवेशरहितममूर्तं मूर्ततां (रूपादिमत्परिणतिम्) न याति, आकाशादौ तथा दर्शनात्, एवं मूर्त्तममूर्त्तपरिणतिं नाऽऽयाति परमाण्वादिषु तत्सद्भावाऽप्रसिद्धेः, यस्मादेवं न स्वरूपविपर्ययो भवति ततो नियमात् कर्मप्रकृत्याऽऽत्मनो बन्धाद्यसङ्गतम् इति चेद् आह—

देहेत्यादि—

(शास्त्रवार्ता)

देहस्पर्शादिसंवित्त्या, न यात्येवेत्ययुक्तिमत् ।
अन्योऽन्यव्याप्तिजा चेयमिति बन्धादिसङ्गतम् ॥४२॥

अन्वयः—देहस्पर्शादिसंवित्त्या, न, यात्येव इति, अयुक्तिमत्, इयम्, च, अन्योन्यव्याप्तिजा, इति, बन्धादि, सङ्गतम् ।

(अव०) देहस्पर्शादिसंवित्त्या—देहे शरीरे यःस्पर्शः कण्टकादिस्पर्शः उपघातहेतूपनिपात इति यावत्, देहस्पर्शादिस्तदादिस्तत्प्रमुखः अनुग्रहहेतूपनिपात इति यावत् देहस्पर्शादिस्तस्य संवित्तिः—तज्जनितसुखदुःखानुभूतिस्तया तथा । न यात्येवेति—अमूर्तं मूर्ततां न यात्येवेत्यादि पूर्वोक्तम् । अयुक्तिमत्—अनुभवबाधितम् अत एवानुचितमित्यर्थः । इयम्—देहस्पर्शादिसंवित्तिः । च—पुनः । अन्योन्यव्याप्तिजा—परस्परव्याप्तिजनिता गुडशुण्ठीद्रव्योरिव शरीरात्मनोर्जात्यन्तरतापत्तिप्रभवा । प्रतिप्रतीकं तदनुभवात् । इति—हेतोः । बन्धादि—प्रागुदीरितं बन्धमोक्षादि । सङ्गतम्—युक्तिमत्, इति ।

युक्तञ्चैतत्-अविभागदर्शनात्, नरत्वादेरेकनिष्ठत्वेऽतिप्रसङ्गात् । एकत्वानवच्छेद्यपर्याप्तिप्रतियोगित्वरूपव्यासज्यवृत्तित्वे च सांख्यस्य भवेदपसिद्धान्तः । व्यासज्यवृत्तिजात्यनभ्युपगमात्, एकाश्रयत्वानुभवविरोधात्, शरीराप्रत्यक्षेऽप्यन्धकारे नरत्वप्रतीत्यनुपपत्तेश्च । एवं तर्हि ज्ञानादयोऽपि भवेयुः शरीरे, रूपादयोऽपि जीव इति चेत्-इष्टापत्तिस्तदाह सम्मतौ श्रीसिद्धसेन—

गुणान्तरापत्तिरिति न किञ्चिदेतत् । न च तत्तो घटादिरेव कर्मणा जीवस्य सम्बन्धो ज्ञानात्, तयोऽनुग्रहोपघातौ तु तत्र तत्रापदेव न स्यादिति वाच्यम् । सुरापानोपयोगादिना ज्ञानस्येव मूर्तानामपि कर्मप्रकृतेः सकाशात् जीवस्योपघातानुग्रहभावस्य तुल्यत्वात् उपघातानुग्रहभावस्याऽऽत्मगुणभावलक्षणस्यैवासङ्गतत्वात् ।

शरीरमपि सर्वत्रिताऽऽत्मनोऽपि विभुत्वे सम्भवति, तदेव चेदानीमपि न सिद्धमिति चेत्, न, शरीरमितत्वादिनाऽनुभवस्यैवाऽऽत्मनोऽनुभवात्, मूर्तत्वस्य नाना ज्ञानानात्मत्वस्य तथादिभिर्दोषोपपत्तेः । न च द्रव्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति महत्त्वस्य हेतुत्वात् सिद्धौ तत्रावयवमहत्त्वाजन्यत्वेन नित्यतया आत्मा विभुः नित्यमहत्त्वात् आकाशवत् इत्यनुमानात् तस्य विभुत्वमेव युक्तमिति वाच्यम् । नित्यमहत्त्वेऽप्यपकृष्टपरिमाणवत्त्वे बाधकाभावेनाप्रयोजकत्वात् । तथापि हेतुत्वे तस्य जन्यत्वापत्तिर्बाधिका, गगनमहत्त्वाद्यपेक्षयापकर्षस्य महत्त्वे जन्यतावच्छेदकत्वादिति वाच्यम् परमाणुपरिमाणमादाय तत्राऽपकर्षतावच्छेदकताभावात्, त्रुटिमहत्त्वावच्छिन्नोत्कर्षेण सह साङ्कर्येण तादृशजात्यसिद्धेश्च ।

एवं सति कथमात्मनो विभुत्वे स्वस्मिन् क्रियादिप्रतीतिः, तीर्थगमनादेरदृष्टहेतुत्वस्वर्गादिफलोपपादनं च ? कथं चाऽऽत्मनः सर्वगतत्वात् स्वशरीरादन्यत्रापि न ज्ञानोत्पादः ? शरीराभावादन्यत्र न ज्ञानोत्पाद इति चेत्, न, अन्यशरीरस्य सत्त्वात् । स्वशरीराभावादिति चेत् ? स्वसंयुक्तत्वेन तस्यापि स्वीयत्वात् । स्वादृष्टोपगृहीतशरीराभावादिति चेत् तर्हि उपजीव्यत्वात् तददृष्टस्यैव तद्ज्ञानादिहेतुत्वात्, तस्य शरीरव्यापितयाऽऽत्मनस्तथात्वसिद्धिः । तदुक्तम्—

यत्रैव यो दृष्टगुणः स तत्र, कुम्भादिवन्निष्प्रतिपक्षमेतत् ।
तथापि देहाद् बहिरात्मतत्त्वमतत्त्ववादोपहताः पठन्ति ॥

(कल्पलतावतारिका)

सांख्य ! कपिलप्रमुखसांख्याचार्य्य। यत्—यस्मात्। (त्वम्) जगत्—भुवनम्। प्रकृतिजन्म—प्रकृतेः—प्रकृतिशब्दवाच्यात् गुणत्रयात्मप्रकृतेः कर्मप्रकृतेश्च जन्म यस्य तत्तथा। मन्यसे—स्वीकुरुषे। इदम्—एतत्। एव—खलु। केवलम्—तन्मात्रम्। आवयोः—त्वं सांख्यश्चाहमार्हतश्च आवाम् परत्वादस्मच्छब्दस्यैकशेषे "य शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी" इत्यभियुक्तोक्त्या द्वित्वविवक्षायां द्विवचनविभक्तिः तयोस्तथा। सख्यम्—मैत्रीभावः। तु—पुनः। एवम्—अनेन प्रकारेण। विधर्मणः-विगतो धर्मो ज्ञानादिर्यस्मादसौ विधर्मा तस्य तथा। भणितौ—कथने, निरूपणे इति यावत्। (आवयोः) संख्यम्—युद्धम्। एव—अवधारणार्थकमव्ययम्। केवलं संख्यमेवेत्यर्थः। भजत्—प्राप्नुवत्। वर्तते इति शेषः। भवचक्रपरिभ्रमणात्मकस्य जगतः प्रकृतिजन्यत्वविषये भवता सह विवादो नास्ति, कर्मप्रकृतिकस्य जगतोऽस्माभिरपि स्वीकारात्, केवलमात्मस्वरूपविषये विवादो यतस्त्वया विधर्माऽऽत्मा मन्यते मया तु सधर्मेतिभावः।

पूर्वोक्तमेव स्पष्टयति भगवन्स्तुतिमुखेन आत्मानमित्यादि—

(कल्पलता)

आत्मानं भवभोगयोगसुभगं, विस्पष्टमाचष्ट यो,
यः कर्मप्रकृतिं जगाद जगतां, बीजं जगच्छर्मणे।
नद्योऽब्धाविव दर्शनानि निखिलान्यायान्ति यद्दर्शने,
तं देवं शरणं भजन्तु भविनः, स्याद्वादविद्यानिधिम् ॥८॥

अन्वयः—जगच्छर्मणे, यः, भवभोगयोगसुभगम्, आत्मानम्, विस्पष्टम्, आचष्ट, यः, कर्मप्रकृतिम्, जगताम्, बीजम्, जगाद, नद्यः, अब्धौ

त्वेनापरिच्छेदात् । भावोऽप्यभावतां नैव प्रयाति, अभावोत्पत्त्यादि-दोषप्रसङ्गात्। यतः क्षणिकभावस्य द्वितीयादिक्षणेऽसत्त्वे सति भवेद-सत्त्वोत्पादोऽपि, कादाचित्कत्वात्, उत्पादाच्च तस्यासत्त्वस्य स्याद्वि-नाशोऽपि, कृतकत्वात्। ततो नष्टस्य सतः पुनर्भावः स्यात्, नष्टस्य नित्यत्वात् न दोष इति चेत्—तर्हि सदानाशे प्रथमक्षणेऽपि भाव-स्यानवस्थानात्। न च भावनाशो भावस्थितिधर्माभाव एव विना-शस्य सांव्यवहार्य-तात्त्विकत्वेन द्वैविध्यात्, आद्यस्य भावनिवृत्तिरूप-त्वेऽपि द्वितीयस्य भावरूपत्वादिति वाच्यम्, क्षणस्थितिधर्मकत्व-स्यापि द्वितीयादिक्षणास्थितौ सत्यामेव सम्भवादुक्तदोषापरिहारात्।

नाभावो भावतां यातीत्यादुपसंहरन्ति सूरिपादाः सतोऽसत्त्व-मित्यादिना ।

(शास्त्रवार्ता०)

सतोऽसत्त्वं यतश्चैवं, सर्वथा नोपपद्यते ।
नाभावो भावमेतीह, ततश्चैतद्व्यवस्थितम् ॥३८॥

अन्वयः—यतश्च, एवम्, सतः, असत्त्वम्, सर्वथा न उपपद्यते, ततश्च, इह, अभावः, भावम्, न, एति, इति, एतद्, व्यवस्थितम्।

(अव०) **यतश्च**-यतः कारणात् खलु। **एवम्**-पूर्वोक्तप्रकारेण। **सतः**—भावस्य। **असत्त्वम्**—अभावत्वम्। **सर्वथा**—सर्वैः प्रकारैर्विचार्य-माणम् । **न उपपद्यते**—भावोन्मज्जनप्रसङ्गान्न सङ्गतिमङ्गति। **ततश्च**—तस्मात्खलु। **इह**-प्रस्तुतविचारप्रस्तावे। **अभावः**, **भावम्**—सत्ताम्, भाव-प्रधाननिर्देशः। **न एति**— नाधिगच्छति। **इति एतद्**, **व्यवस्थितम्**—पूर्वकथितमुपपन्नम् । भावविच्छेदेनाभावानुपपत्तेः, तदविच्छेदे च द्रव्यांशान्वयादिति ।

त्वादिरूपं न बाधकम् । नचाधिकरणस्वरूपत्वेऽननुगमो बाधकः, तथासत्यभावाभावस्यापि प्रतियोग्यात्मकत्वविलयेऽपसिद्धान्तात् । तत्र तदभावाभावत्वमेकमेवेति चेत्, किं तत् ? घटत्वादिकमिति चेत्, कथमस्य तत्त्वम् ? तेन रूपेण घटादिमत्ताप्रतीतौ घटाद्यभावाभावव्यवहारादिति चेत्, कथं तर्हि तदसाधारणधर्मान्तराणामपि न तथात्वम् ? किञ्च, एवं घटत्वादिज्ञानं प्रतियोगिज्ञानं विना न स्यात्, अभावप्रत्यक्षे योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञानत्वेन हेतुत्वात्, अन्यथा तन्निर्विकल्पकप्रसङ्गात् । यदि च निर्विकल्पकीयविषयतया घटत्वादिनाऽभावस्य प्रत्यक्षस्याभावत्वांशे निर्विकल्पकस्य स्वीकारे विशेष्यतानवच्छिन्ननिर्विकल्पकीयविषयतया वा प्रत्यक्षेऽभावत्वभेदस्य कारणत्वात् तन्निर्विकल्पकं वार्यते तदा घटत्वादेरपि निर्विकल्पकाप्रसङ्गात्, भावावृत्तितयोक्तविषयतया विशेषणे चाप्रसिद्धेः । अस्तु तर्हि अभावाभावोऽप्यतिरिक्त एव, तृतीयाभावादेः प्रथमाभावादिरूपत्वेनानवस्थापरिहारादिति चेत् । तर्ह्यनन्ताभावानां तत्राभावत्वस्य कल्पनामपेक्ष्य क्लृप्ताधिकरणेष्वेव वरमेकोऽभावत्वपरिणामोऽनुभूयमानः श्रद्धीयताम् । नह्ययमभावः इति स्वातन्त्र्येण कस्याप्यनुभवोऽस्ति, किन्त्वधिकरणस्वरूपमेव तत्तदारोपिततत्प्रतियोगिग्रहादिमहिम्ना तत्तदभावत्वेनानुभूयत इति ।" अधिकं लतायामेवावलोकनीयम् । तथा चाभावो भावत्वं नैति, भावश्चाभावतां न यातीति भावानां क्षणिकत्वं न युक्तिसङ्गतम् । रूपादीनामपि कार्यबोधजनकत्वं विचार्यमाणं नोपपद्यते । वास्यवासकभावाद्यपि विकल्पानुपपत्तितः सङ्गतिं नैवाञ्चति । एवञ्च सतां कथञ्चिद् ध्रौव्यमङ्गीकरणीयम् । सतां ध्रौव्यस्वीकारे सत्यार्षवचनविरोधो परिहृतो भवति

नान्यथा । क्षणिकत्ववादे तु 'इत एकनवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः। तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोऽस्मि भिक्षवः ! ॥१॥ इति बुद्धस्य कण्टकेन पादे विद्धे भिक्षुभिः पर्यनुयोगे विहितेऽनुयोगकृत सौगतोक्तं विरुध्येत । सन्तानापेक्षादि पुरस्कृत्यौऽस्वपनविरोधपरिहारः क्रमेणाक्रमयैवान्वायमनुसरतीति सन्तानापेक्षादिर्मीमांसा नैव मतिमांसला । अपि च भगवता सौगतेन भिक्षून् आनन्त्य स्वयमेव पृथिव्याः चत्वरस्थापितं यदुपदिष्टं 'कस्यचिद् पुरुष अभिगत्याया' इत्यादि तत्र सङ्गतिमङ्गति क्षणिकत्ववादे । रूपादयः पञ्च बाह्या द्विविज्ञेया इत्यपार्थं क्षणिकत्वाभावे एव सङ्गच्छते, क्षणिकत्वे तु रूपादीनामिन्द्रियमनोविज्ञानग्राह्यत्वात्तन्मते द्विविज्ञेयत्वं न स्यात्। द्विविज्ञेयत्वशब्दार्थो हि भिन्नकालग्रह एवोपपद्यते । एककालग्रहे त्वेकस्यानर्थक्यादप्रामाण्यं भवेदिति । एवमनेकदोषदूषितमेकान्तेन क्षणिकत्वं मायानामपाकरणीयमेव । नो चेत् कथमप्यवहेतस्य सौगतस्य वादसमरे यथा विनिपातो भवति तथान्यस्यापि स्यादेव । अतः मा भूदस्मद्गते वाचकवरैर्यतः संरम्भमित्यादिना—

(कल्पलता)

संरम्भमस्मासु वितत्य सत्य-मतो यतोऽचैर्निपपात बौद्धः ।
अनेन शोच्यां तु दशां सहायी-कृतोऽपि योगो यदसौ जगाम ॥४॥

अन्वयः— अतः, बौद्धः, अस्मासु, संरम्भम्, वितत्य, उच्चैः, निपपात, सत्यम्, यतः, मतः, तु, अनेन, सहायीकृतः, अपि, असौ, योगः, शोच्याम्, दशाम्, जगाम ।

(कल्पलतावतारिका)

अतः—क्षणिकत्ववादखण्डनाद्धेतोः । बौद्धः—बुद्धमतानुयायी

[illegible] । निरन्- [illegible] । उच्चैः—[illegible] । निपपात—[illegible] इति यावत् । सत्यम्—[illegible] । जन—[illegible] । यत्—[illegible] । तु—पुनः । अनेन—[illegible] गदागीकृतः—[illegible] गणितः । अपि—सम्भावनायाम् । असौ—एषः, पुरोवर्ती । यौगः—योगाचारः । शोच्याम्—शोकजननीम् । दशाम्—अवस्थाम् । जगाम—प्राप्तवान् । पर्यायोक्तमलङ्कारः प्रस्तुतमूलं । यौगो योगश्च पराजिताविति व्यङ्ग्यस्य भङ्ग्यन्तरेण कथनात् । 'पर्यायोक्तं तु गम्यस्य, वचो भङ्ग्यन्तराश्रयम्' इति तल्लक्षणात् ।

उक्तमेव भङ्ग्यन्तरेणोपपादयन्ति– ताथागतानामिति—

(कल्पलता)

ताथागतानां समयं समुद्रं, तर्कोऽयमौर्वानिलवद्ददाह ।
पश्यन्तु नश्यन्ति जवेन भीताः, दीना न मीना इव किं तदेते ॥५॥

अन्वय—और्वानलवत्, अयं, तर्कः, ताथागतानाम्, समयम्, समुद्रम्, ददाह, तत्, मीनाः, इव, भीताः, दीनाः, एते, जवेन, न, नश्यन्ति, किम्,–पश्यन्तु ।

(कल्पलतावतारिका)

और्वानलवत्—वडवाग्निरिव । **अयम्**—प्रत्यक्षीक्रियमाण एष । **तर्कः**—युक्तियुक्त आर्हतमतविचारः । **ताथागतानाम्**—यथातथवादिनां तथागततनयानां बौद्धानाम् । **समयम्**—क्षणिकत्वादिसिद्धान्तम् ।

समुद्रम्—पारावारप्रतिमम्। ददाह-अदहत। तत्—तस्मात्। मीनाः इव—मत्स्यवत्। भीताः—साध्वसमापन्नाः। दीनाः—दैन्यान्विताः। एते—सौगताः। जवेन—शीघ्रं। न नश्यन्तिकिम्?—किमु न पलायन्ते? अपि तु नश्यन्त्येव। तत्पलायनं पश्यन्तु—विलोकयन्तु, भवन्त इति शेषः। पर्यायोक्ति-रूपकानुप्रासा अलङ्काराः।

सौत्रान्तिकं सौगतविशेषमुपहसन्नाह रक्त इति।

(कल्पलता)

रक्तः प्रसक्तः क्षणिकत्वसिद्धौ, यदुक्तसूत्रं हतवान् स्वकीयम्।
सूत्रान्तकोऽप्येष लिपिभ्रमेण, सौत्रान्तिको लोक इति प्रसिद्धः ॥६॥

अन्वयः—क्षणिकत्वसिद्धौ, रक्तः, प्रसक्तः, एषः, यत्, स्वकीयम्, उक्तसूत्रम्, हतवान्, (इति) सूत्रान्तकः, अपि लिपिभ्रमेण लोके, सौत्रान्तिकः, इति, प्रसिद्धः।

(कल्पलतावतारिका)

क्षणिकत्वसिद्धौ—'यत् सत् तत् क्षणिकम्' इति व्याप्तेः साधनार्थम्। रक्तः—रागवान्, तदेकरसः। अत एव प्रसक्तः—क्षणिकतासाधनाय संलग्नः,अन्योद्योगमात्रमपहायात्रैव दत्तदृष्टिः। एषः—प्रत्यक्षं दृश्यमानः सौत्रान्तिकाभिधानः सौगतः। यत्—यतः। स्वकीयम्—नैजम्, बुद्धसम्बन्धीति यावत्। उक्तसूत्रम्—पूर्वप्रतिपादितं वचनम्, 'इत एकनवते कल्पे-' 'कण्टकाद् पुद्गल-' इत्यादिसूत्रम्। हतवान्—नष्टं चकार, असङ्गतं विदधे, क्षणिकत्वे सिद्धे उक्तसूत्रं नैव तथ्यं स्यादिति भावः। इति अयं सूत्रान्तकः—सूत्रमन्तयतीति सूत्रान्तक इत्यन्व-

॥ अथ पञ्चमः स्तवकः ॥

[illegible] स्वामी सदि—

([illegible])

स्वामी सतामीडितसिद्धगोऽन्तर्यामी स चामीकरकान्तिराप्तः ।
वामीभवन्तोऽपि परे बतामी, क्षमा न यद्दर्शनलङ्घनाय ॥१॥

अन्वयः—यद्दर्शनलङ्घनाय, बत, वामीभवन्तः, अपि, परे, अमी, न, क्षमाः, सः, अन्तर्यामी, चामीकरकान्तिः, आप्तः, स्वामी, सताम्, ईडितसिद्धगो, (स्यात्) ।

(कल्पलतावतारिका)

यद्दर्शनलङ्घनाय—यस्य प्रभोः शासनं लङ्घितुम्, अर्हदुपदिष्टस्याद्वाददर्शनावाकरणाय । बत—खेदे, अहो अमी वराका एतादृशं सर्वजनश्रेयस्करमर्हच्छासनं विघटयितुं यतन्ते इति खेदोद्गारसूचा, एवञ्च दुरितभरभृता एते दुर्गतिं गमिष्यन्तीति अनुकम्प्यास्ते इति बत अनुकम्पाज्ञापकम्, कृतेऽपि प्रबलप्रयत्ने नार्हच्छासनं स्वल्पमपि विलङ्घयितुमीशास्ते इति सन्तोषव्यञ्जकमिदम् । अहो अर्हच्छासनस्याद्भुतं सामर्थ्यं यत्र केऽपि तदभिद्रवन्तीति विस्मयापादकं बताव्ययम् । 'खेदानुकम्पासन्तोष-विस्मयामन्त्रणे बत' इत्यमरः । वामीभवन्तः—अवामा वामा भवन्त इति वामीभवन्तः, वक्रतामाचरन्तः । वामाशब्दस्य स्त्रीवाचकत्वमपि, तथा च वामीभवन्त इत्यनेन स्त्रैणमनुसरन्त इति व्यज्यते, स्त्रीप्राया निःसत्त्वा न कमपि विलङ्घयितुं प्रभवन्ते किं पुनरर्हच्छासनं प्रबलम् । अपि—तथापि । परे अमी—पुरोवर्तिनः शत्रुप्रायाः सौगताद्याः । न—नैव । क्षमाः—अलम्, समर्था

अन्वयः—यत्, तत्, अर्थग्रहणरूपम्, स्वसंवेद्यम्, इष्यते, तद्वेदने तस्य, ग्रहः, ततः, किम्, न, उपपद्यते ।

(अव०) यत्—यस्मात्कारणात्। तत्—बुद्धिविषयतामापन्नं विज्ञानम्। अर्थग्रहणरूपम्—बाह्यवस्तुपरिच्छेदात्मकं सत्। स्वसंवेद्यम्—निजसंवेदनविषयताविशिष्टम्। इष्यते—इच्छाविषयीक्रियते, "नीलमहं वेद्मि" इति विच्छिन्नार्थग्रहणरूपतयाऽनुभवात्। तद्वेदने—एवम्भूतविज्ञानानुभवे। तस्य—बाह्यार्थस्य। ग्रहः—ज्ञानम्। भवतीति शेषः। ततः—तस्मात्कारणात्। किम्—किमात्मकं वस्तु, कः पदार्थ इति यावत्। न—नहि। उपपद्यते—उपपत्तियुक्तं भवति, उपयुक्तं भवतीति यावत्, अपि तु सर्वं वस्तूपपद्यत एवेति भावः।

तथा चोपाध्यायाः—खलस्येति—

(कल्पलता)

खलस्य योगाचारस्य, ज्ञात्वार्थद्वेपितामिव ।
सभायामधुना सभ्याः, अनर्थ उपतिष्ठते ॥४॥

अन्वयः—सभ्याः, खलस्य, योगाचारस्य, अर्थद्वेपिताम्, ज्ञात्वा, इव अधुना, सभायाम्, अनर्थः, उपतिष्ठते, ।

(कल्पलतावतारिका)

सभ्याः—हे सज्जनाः ! सदस्याः ! खलस्य—दुर्जनस्य । योगाचारस्य—तदभिधानसुगतशिष्यस्य । अर्थद्वेपिताम्—बाह्यपदार्थद्वेषम्, ज्ञानातिरिक्तबाह्यपदार्थास्वीकरणमितियावत् । ज्ञात्वा—विज्ञाय । इव—उत्प्रेक्षायाम् । 'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो, नूनमित्येवमादिभिः ।

[illegible] ... शेषप्रभवेऽहेतुत्वादित्यधिकं स्याद्वादकल्पलतायामवलोकनीयं जिज्ञासुभिः।

अथ क्षणिकत्वे "अर्थक्रियासमर्थत्वात्" इति द्वितीयं कारणमुपन्यस्तं तदपि खण्ड्यते तावदार्हतैस्तथाहि यत्तैः क्षणिके (निरन्वयनश्वरे वस्तुनि) अर्थक्रियासमर्थत्वमुक्तम्, तन्न युक्तम्, तदुत्पत्त्यनन्तरं नाशात्, ततः किमायातमिति चेत्, यतोऽसावर्थक्रियाजनकत्वाभिमतः पदार्थ एव वा स्यात्, तदनन्तरभावी पदार्थ एव वा स्यात्, द्वाविमौ प्रकारावत्र सम्भवतस्तत्र नाद्यः पक्षः समीचीनः अर्थक्रियायास्तदात्मकत्वेऽर्थक्रियायां सामर्थ्यायोगः, अखिलस्वधर्मान्वितस्य तस्य स्वहेतोः समुद्भवात्। नापि द्वितीयः अर्थक्रियायाः स्वभिन्नत्वेऽभ्युपगम्यमानेऽन्यस्य हेतोरन्यत्रार्थक्रियायां सामर्थ्यमित्ययुक्तम्, सामर्थ्यसामर्थ्यवतोरभेदात्, सामर्थ्यवदन्यत्र तदभावात्, दण्डादेः सकाशात् घटाद्युत्पाद एव सामर्थ्यमिति चेन्न, उपादानमन्तरेणान्यभावस्यान्याय्यत्वात्। कुतोऽन्याय्यत्वमिति चेदत्रोच्यते—
यस्मादन्यसत्त्वस्थितावपि किमुत तन्निवृत्तौ असत् सद् न जायते,

तच्छक्त्यभावेनातिप्रसङ्गात्, पूर्वक्षणस्यैव चोत्तरक्षणरूपतया भवनेऽन्वयः कथमसिद्धः, भावाविच्छेदस्यैवान्वयात् ?

किञ्च प्रस्तुतभावानां क्रियात्मिका भूतिर्भवतोक्ता सा भूतिर्न्यायतः क्वचिद् न युज्यते, कर्तृभोक्तृस्वभावत्वविरोधात्, सा किं कर्तृस्वभावा वा स्याद् भोक्तृस्वभावा वा ? कर्तृस्वभावत्वे न भोक्तृस्वभावत्वम्, भोक्तृस्वभावत्वे न कर्तृत्वं स्यात्। नच कर्तृस्वभावत्वमेव भोक्तृस्वभावत्वम्, घटकलशादिपदानामिव कर्तृभोक्तृपदयोरभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तकत्वेन पर्य्यायत्वापातात् चरमस्य कर्तृत्वाभावाच्च भावे, वा चरमत्वविरोधात् नचादौ कर्तृस्वभावैव अन्ते च भोक्तृस्वभावा मध्ये तूभयस्वभावेतिवाच्यम् द्वैरूप्यविरोधात्। एवञ्च क्षणिकत्वसाधको द्वितीयोऽपि हेतुर्निरस्तः।

क्षणिकत्वसाधकस्तृतीयोऽपि परिणामात्मको हेतुः पूर्वप्रदर्शितः सुगततनयैरयुक्तस्तथाहि—अतादवस्थ्यलक्षणः परिणामोऽपि क्षणिकत्वसाधने (निरन्वयनाशसाधने) न समर्थः सर्वकालमेव बालकुमारादि भावेन घटशरावादिभावेन च विभिन्नरूपत्वेऽपि देहमृदादिभावोपलब्धेः। अयमाशयः चित्रज्ञाने नानाकारोपलम्भेऽप्येकरूपोपलम्भात् यथा चित्रैकरूपताऽविरोधस्तथा परिणामित्वेन भेदसिद्धावपि 'सोऽयं देहः' इत्याद्यभेदोपलम्भाद् न स्थैर्य्यबाधः, अनुभवसिद्धयोर्भेदाभेदयोरपि समावेशात्। एवञ्च यस्मात्कारणात् न सर्वथाऽर्थान्तरगमनम् नचैकान्तेनार्थान्तरागमनम् एतादृशः परिणामः पण्डितैः स्वीकरणीयः "तद्भावः परिणामो यत् तत्तेन तथाभूयते" इतिवचनात्। युक्तमेतत् सुवर्णं हि कुण्डलतया परिणममानं न सर्वथैव कुण्डलभावं भजते, सुवर्णरूपस्यापि परित्यागापत्तेः, नच सर्वथा न भजतेऽपि अकुण्ड-

[illegible]

अथ वैशेषिकादयः प्रत्यभिज्ञया [illegible] स्थैर्ये सिद्धेऽपि कथंचित् नित्यानित्यत्वस्य वस्तुनः सिद्धिः, घटप्रतियोगिकत्वेन ध्वंसानुभवकाले समानाधिकरणतया नष्टे ध्वंसप्रतियोगित्वनष्टत्वयोगित्वलक्षणयोर्नित्यत्वानित्यत्वयोर्विरोधात्। अथ वृक्षे शाखामूलावच्छेदेन कपिसंयोगतदभाववदेकत्रापि द्रव्यतया पर्यायतया च नित्यानित्यत्वमुपपत्स्यते गुञ्जाफलादौ श्यामतारक्ततयोर्विभिन्नदेशावच्छेदरूपाया अण्डशो व्याप्तेर्वैलक्षण्येनैवान्योन्यव्याप्तिव्यवस्थितेर्विभिन्नदेशानवच्छिन्नापृथग्भावस्यैव तदर्थत्वादिति चेन्न आश्रयन्यूनवृत्तेरेवावच्छेदकत्वेन घटत्वेन घटेऽनित्यताया द्रव्यत्वेन

च नित्यताया असम्भवात्, न हि भवति शाखायां शाखात्वावच्छेदेन कपिसंयोगाभावः, वृक्षत्वावच्छेदेन कपिसंयोग इति किञ्चैवं नित्यत्वादिज्ञानस्यानित्यत्वादिधीप्रतिबन्धकताया अव्याप्यवृत्तित्वज्ञानाद्युत्तेजकत्वं वाच्यमिति गौरवमिति कथयन्ति।

अत्राहुः सिद्धान्तिनः—

प्रत्यभिज्ञैव वस्तुनो नित्यानित्यत्वे मानम्, पूर्वोत्तरतत्तेदन्तास्वभावभेदानुविद्धस्यैवोर्ध्वतासामान्याख्याभेदस्य तया विषयीकरणात्। नच तत्तेदन्तोभयनिरूपितैकस्वभावमेव तत्, भिन्नकाले तदभावादेव च तदननुभव इति युक्तम्, "इदानीं तत्रास्वभावमिदम्" इति व्यवहारप्रामाण्यप्रसङ्गात्। किञ्च विशिष्टात्यन्ताभाववद् विशिष्टध्वंसोऽपि परेणाकामेनापि स्वीकर्तव्यः, "शिखी विनष्टः" इति प्रतीतेरन्यथाऽनुपपत्तेः। प्रतियन्ति च लोका अपि नित्यानित्यत्वं वस्तुनः— "घटरूपेण मृद्द्रव्यं नष्टं, मृद्रूपेण न नष्टम्" इति घटरूपेण घटो नष्टः न तु मृद्रूपेण इत्यादि, अधिकं स्याद्वादकल्पलतायामवलोकनीयम्।

क्षणिकत्वसाधकं "क्षयेक्षणात्" इति पूर्वमुपन्यस्तं तुरीयं हेतुमधुना निराकरोति सिद्धान्तशिरोमणिराहतमुख्यः सूरिराट्।

तथाहि—यत्पूर्वं क्षणिकत्ववादिभिः अन्ते क्षयदर्शनं प्रथमक्षणे वस्तुनः सर्वथा नाशस्यानुमापकमिति प्रोक्तम्, तन्न समीचीनम्, तस्यैव वस्तुनोऽन्त एव क्षयस्वभावत्वात्, अन्ते क्षयदर्शनस्य प्रथमक्षणनाशानुमापकत्वाभावात्, अन्यथाऽतत्स्वभावत्वात्। यदि प्रथमक्षण एव नाशस्वभावं वस्त्वभ्युपगम्यते, तर्हि अन्त एव क्षयदर्शनं कथम्, आदावेव कुतो न तद्दर्शनं स्यात्, न च भवति ततः प्रथमक्षणे क्षयस्वभावता नाभ्युपगन्तव्येति। न च सदृशोत्तरोत्तरक्षणप्रतिरोधात्

[illegible]

[illegible] । श्रीवामानन्दनस्य—[illegible] पुत्रो वामानन्दनः [illegible] या महिषी वामानन्दनः [illegible] । भगवतः श्रीपार्श्वनाथस्य । पदौ—चरणौ । चेत्—यदि । हृदये—अन्तःकरणे । पदम्—स्थानम् । धत्तः—धारयतः । तत्—तर्हि । सुरद्रु-कामकलश-स्वर्धेनवः—कल्पवृक्ष-मनोरथपूरकपूर्णकुम्भ-सुरभयः । अन्तिके—समीपे न—नहि । वर्तन्ते इति शेषः । किम्—प्रश्नार्थकमव्ययम् । अपि तु वर्तन्त एवेति भावः । 'किं कुत्सायां वितर्के च निषेधप्रश्नयोरपी' ति मेदिनी । भगवच्छ्रीपार्श्वनाथविषयककविगतरतेः प्राधान्येनाभिव्यज्यमानत्वाद्भावध्वनिर्वेदितव्यः अनुप्रासश्चालङ्कारः ।

(कल्पलता)

आगच्छत्त्रिपदीनदीसमुदयद्भङ्गभ्रमप्रोच्छल—
त्तर्कोर्मिप्रसरस्फुरन्नयरयस्याद्वादफेनोच्चयः ।

यस्याद्यापि विसृत्वरो विजयते, स्याद्वादरत्नाकर–
स्तं वीरं प्रणिदध्महे त्रिजगता-माधारमेकं जिनम् ॥३॥

अन्वयः—अद्यापि, यस्य, आगच्छत्त्रिपदीनदीसमुदयद्भङ्गभ्रमप्रोच्छलत्तर्कोर्मिप्रसरस्फुरन्नयरयस्याद्वादफेनोच्चयः, विसृत्वरः, स्याद्वादरत्नाकरः, विजयते, त्रिजगताम्, एकम्, आधारम्, तम्, वीरम्, जिनम्, प्रणिदध्महे।

(कल्पलतावतारिका)

अद्यापि—अधुनापि। यस्य—बुद्धिविषयीभूतस्य चरमतीर्थकृतो वर्द्धमानस्य। आगच्छत्त्रिपदीनदीसमुदयद्भङ्गभ्रमप्रोच्छलत्तर्कोर्मिप्रसरस्फुरन्नयरयस्याद्वादफेनोच्चयः—त्रयाणां पदानां समाहारस्त्रिपदी सैव नदी तरङ्गिणी। 'उप्पन्नेइ वा विगमे इ वा धुवे इ वा' इत्यात्मिका आगच्छन्ती भिन्नभिन्नप्रदेशादायान्ती चासौ त्रिपदी नदी आगच्छत्त्रिपदीनदी ततः समुदयन्तः समुत्पद्यमानाः भङ्गाः सप्तभङ्गी एव भ्रमा आवर्तास्ततः प्रोच्छलन्तः प्रकर्षेणोद्गच्छन्तस्तर्का विचारणा एवोर्मयस्तरङ्गास्तेषां प्रसरः प्रसरणन्ततः स्फुरन्तो विजृम्भमाणा विलसन्त इति यावत् नयाः सद्वचनरचनप्रकारा एव रया वेगास्तेभ्यः (समुत्पद्यमानः) स्याद्वादः– स्यात्पदलाञ्छितवाद एव फेनोघयो डिण्डीरसमूहो यस्य यस्मिन् वा स तथा। विसृत्वरः—विस्तारयुक्तः। स्याद्वादरत्नाकरः—स्याद्वादोऽनेकान्तदर्शनमेव रत्नाकरः समुद्रस्तथा। विजयते—सर्वोत्कर्षेण वर्तते। त्रिजगताम्—त्रिभुवनानाम्। एकम्—मुख्यम्। आधारम्—आश्रयस्वरूपम्। तम्—बुद्धिविषयीभूतम्। वीरम्—नामैकदेशे नामग्रहणात् महावीरम्। जिनम्—तीर्थकृतम्।

प्रणिदध्महे—सम्यग्ध्यानविषयीकुर्मः । सावयवरूपकमलङ्कारः । अनुबन्धचतुष्टयसूचनञ्चाप्यनुसन्धेयम् ।

प्रस्तुतविषयमवतारयन्ति—पीत इति ।

(कल्पलता)

पीतेऽन्यवार्ताकलुषोदकेऽपि, नोच्छिद्यते तत्त्वपिपासया वः ।
आकर्णयन्त्वार्हतशास्त्रवार्ता, कर्णामृतं सम्प्रति तत् सकर्णाः ॥४॥

अन्वयः · अन्यवार्ताकलुषोदके, पीते, अपि, वः, तत्त्वपिपासया, न, उच्छिद्यते, तत्, सकर्णाः ! सम्प्रति कर्णामृतम्, आर्हतशास्त्रवार्ताम्, आकर्णयन्तु ।

(कल्पलतावतारिका)

अन्यवार्ताकलुषोदके—अन्येषां चार्वाकादीनां वार्ताः सिद्धान्ता अन्यवार्ताः, ता एव कलुषोदकम्-कालुष्ययुक्तं जलम् अन्यवार्ताकलुषोदकम्, तस्मिँस्तथा । **पीते**—पानकर्मीकृते पानक्रियानिरूपितकर्मतामापादिते इति यावत् । **अपि**—सम्भावनायाम् । **वः**—युष्माकम्, सकर्णानामितिशेषः । **तत्त्वपिपासया**—तत्त्वं याथार्थ्यमेवामृतम् तस्य पिपासा पातुमिच्छा तत्त्वपिपासा, तया तथा । **न**—नहि । **उच्छिद्यते**—समुच्छेदः प्राप्यते विनश्यते इति यावत् । **तत्**—तस्माद्धेतोः । **सकर्णाः !**—सज्जकर्णेन्द्रिया भवन्तो भवन्त विबुधाः ! **सम्प्रति**—अधुना । **कर्णामृतम्**—श्रवणसुखकरम् । **आर्हतशास्त्रवार्ताम्**—जैनाऽऽगमसिद्धान्तम् । अमृतपदस्याजहल्लिङ्गतया वार्ताविशेषणत्वेऽपि नपुंसकतैव । **आकर्णयन्तु**—शृण्वन्तु । यथा सातिशयपिपासुना कालुष्याकुलित सलिलं निपीयाऽपि तृप्तिमलभमानेन समीचीनममृतं (जलम्)

पाटवकाशेन सुरक्षितेन भूषणे सहैव गतप्रयुक्तानुमितिरन्यापीयं सूचितं सिद्धान्तं समाकर्ण्योऽपि सन्तोषमत्यन्तमाविर्भवक्रियाद्भिः सचेतोऽपि सुन्दरं जैनागमसिद्धान्तानुगतं पाचुर्याभ्यन्तरैर्गुम्फनातिनिमायः।

अज्ञानतिमिरध्वंसदीपिकां परमतत्त्वोपनिषत्कृतां हितनुवनिःश्रे-यसकरीमार्हतमतवर्णनात् शास्त्रवार्तासमुच्चयकारो भगवान् हरिभद्र-सूरिराह: अन्य इति—

(शास्त्रवार्ता०)

अन्ये त्वाहुरनाद्येव, जीवाजीवात्मकं जगत्।
सदुत्पादव्ययध्रौव्य-युक्तं शास्त्रकृतश्रमाः ॥१॥

अन्वयः शास्त्रकृतश्रमाः, अन्ये, तु, जीवाजीवात्मकम्, सदुत्पाद-व्ययध्रौव्ययुक्तम्, जगत्, अनादि, एव, आहुः।

(अव०) शास्त्रकृतश्रमाः—शास्त्रेषु प्रवचनोपनिषदादिषु कृतो विहितः श्रमो यैस्तादृशाः कृतप्रवचनोपनिषदभ्यसनश्रमाः। अन्ये—चार्वाकादिभ्यः परे आर्हताः। तु—पुनः। जीवाजीवात्मकम्—जीवा-श्चेतनाख्या अजीवा अचेतनाख्या आत्मानः स्वरूपाणि यस्य तत्तथा। तेन चित्तमात्रादिवादनिरासः। सदुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम्—सन्ति पार-मार्थिकसत्तावन्ति न तु प्रातिभासिकसत्तावन्ति उत्पादव्ययध्रौव्याणि सदुत्पादव्ययध्रौव्याणि तैर्युक्तम् विशिष्टं तथा पारमार्थिकोत्पादव्यय-ध्रौव्यमयमित्यर्थः। जगत्—जगत्पदप्रतिपाद्यम्, विश्वम्। अनादि—प्रवाहापेक्षया सनातनम्। एव—व्यवस्थायाम्। तेन नेश्वरादिकृतं तथा प्रधानपरिणामादिकमिति लभ्यते। आहुः—कथयन्ति।

सूरिवरैर्जगत उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वं व्यवस्थापितन्तत्रोत्पादः- "उत्पन्नमिदम्" इति बुद्धिसाक्षिको धर्मविशेषः, स द्विविधः, प्रयोगजनितो विस्रसाजनितश्च, तयोः पुरुषव्यापारजन्यः प्रथमः, स च मूर्तिमद्द्रव्यारब्धावयवकृतत्वात् समुदयवादः, अत एवासावपरिशुद्ध इति गीयते, तदुक्तम्—

† उप्पाओ दुवियप्पो, पओगजणिओ अ वीससा चेव ।
तत्थ य पओगजणिओ, समुदयवाओ अपरिसुद्धो ॥३।३२।

इति सम्मतिसूत्रे गाथा ।

अत्रापरिशुद्धत्वं स्वाश्रययावदवयवोत्पादापेक्षया पूर्णस्वभावत्वम्, अपूर्णावयवस्य घटस्योत्पद्यमानस्य साकल्येनोत्पन्नत्वव्यवहाराभावात् । ननूत्पादस्य भवदुक्तं प्रयोगजन्यत्वमनुपपन्नम्, प्रयत्नजन्यत्वस्य घटादावेव सत्त्वात्, उत्पादस्य पुनराद्यक्षणसम्बन्धरूपस्य तज्जन्यत्वाभावात् इतिचेन्न "मुद्गरपाताद् नष्टो घटः" इति विश्वजनीनव्यवहारतो नाशे मुद्गरपातजन्यत्ववत् "पुरुषव्यापारादुत्पन्नो घटः" इति सर्वजनीनव्यपदेशतः पुनरुत्पादेऽपि पुरुषव्यापारजन्यत्वस्यावश्यकत्वात्, विविच्याननुभूयमानत्वेनोत्पादापलापे स्वीकृते च नाशस्याप्यपलापप्रसङ्गात्, उत्पत्तेराद्यक्षणसम्बन्धेनान्यथासिद्धौ नाशस्यापि चरमक्षणसम्बन्धनाशेनान्यथासिद्धेः सुवचत्वात्, अन्यत्र तदाधारताप्रत्ययस्योत्पत्त्याधारताप्रत्ययस्येवावच्छेदकत्वेनोपपत्तेः । यदि च घटप्रतियोगिकत्वेन नाशो विलक्षण एवानुभूयत इति चेत् तदा तथोत्पादोऽपि विलक्षण एवेति तुल्यम् । किञ्चैवमाद्यक्षणे 'आद्यक्ष-

† उत्पादो द्विविकल्पः प्रयोगजनितश्च विस्रसा चैव ।
तत्र च प्रयोगजनितः समुदयवादोऽपरिशुद्धः ॥३।३२।

णसम्बन्धवान् घटः "इतिवत् आगच्छए उत्पन्नो घट." इति प्रयोगो न सूपपादः स्यादिति न किञ्चिदेतत् ।

पुरुषव्यापाराजन्य उत्पादो द्वितीयः, पुरुषेतरकारकव्यापार-जन्यत्वं तु स्वरूपकथनमेव, न तु लक्षणम्, प्रायोगिकेऽतिव्याप्तेः । स द्विविधः—समुदयजनित ऐकत्विकश्च । तत्र मूर्तिमद्द्रव्यावयवारब्धः समुदयजनितः इतरश्चैकत्विकः, आद्योऽभ्रादीनामुत्पादः, घटादीनाम-प्यप्रथमतया विशिष्टनाशस्य विशिष्टोत्पादनियतत्वात् । न हि मूर्ता-वयवसंयोगकृतत्वं समुदयजनितत्वम् विभागकृतपरमाण्वाद्युत्पादेऽ-व्याप्तेः, किन्तु मूर्तावयवनियतत्वम् । द्वितीयस्तु, गगनधर्माधर्मास्ति-कायानामवगाहकगन्तृस्थातृद्रव्यसन्निधानतोऽवगाहनगतिस्थितिक्रियो-त्पत्तेरनियमेन स्यात् परप्रत्ययः, मूर्तिमदमूर्तिमदवयवद्रव्यद्वयोत्पाद्य-त्वात् । अवगाहनादीनां स्यादैकत्विकः स्यादनैकत्विकश्चेति भावः । तदुक्तम्—

† साभाविओ वि समुदयकओव्व एगत्तिओव्व होज्जाहि ।
आगासाईआणं तिण्हं परपच्चओऽणिअमा ॥३।३३।

इति सम्मतिगाथायाम् ।

व्ययोऽपि स्वाभाविकः प्रयोगजनितश्चेति द्विविधः, तद्व्यति-रिक्तस्य वस्तुनोऽभावात् । पूर्वावस्थाविगमव्यतिरेकेणोत्तरावस्थोत्पत्त्य-नुपपत्तेः । न हि बीजादीनामविनाशेऽङ्कुरादिकार्य्यप्रादुर्भावो दृष्टः । न चावगाहगतिस्थित्याधारत्वं तदनाधारत्वस्वभावप्राक्तनावस्थाध्वंसम-न्तरेण संभवतीति ।

---

† स्वाभाविकोऽपि समुदयकृतो वैकल्पिको वा भविष्यति ।
आकाशादिकानां त्रयाणां परप्रत्ययोऽनियमात् ॥३।३३।

[illegible] कथं 'प्रमाणनयैरधिगमः' इति [illegible], [illegible] समुदाय [illegible], [illegible]परित्यागप्रवृत्तीनां ज्ञानानां समुदायाभावात् । तदिदमुक्तं सम्मतिपद्ये—

तम्हा सव्वे वि णया मिच्छद्दिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अण्णोण्णणिस्सिआ उण हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥१।२१॥

ननु यथा बहुमूल्यान्यपि रत्नान्यननुस्यूतानि "रत्नावली" इति व्यपदेशं न लभन्ते, अनुस्यूतानि च तान्येव "रत्नावली" इति व्यपदेशं लभन्ते त्यजन्ति च प्रत्येकसंज्ञाः, तथा नया अपि प्रत्येकं सम्यक्त्वव्यपदेशं न लभन्ते समुदितास्तु तं लभन्ते, जहति च दुर्नयसंज्ञाः इति कथं दृष्टान्त इति चेत्, निमित्तभेदेन व्यपदेशभेद एवार्थे दृष्टान्तो न तु प्रत्येकसमुदायभाव इति दोषाभावात् ।

ननु "घट उत्पन्न एव" इति स्यादंशविनिर्मुक्तस्य दुर्नयस्यापि नयवत् स्वविषयावधारकत्वमस्त्येव, एवकारेणानुत्पन्नत्वाभावज्ञापनेऽप्युत्पन्नत्वप्रकाशनव्यापारापरित्यागात्, अनेकान्तबलादुभयोपपत्तेः, रक्ततादशायां घटे "न श्यामः" इतिबुद्धिवदिति चेत् सत्यम्, इतरनयविषयविरोधावधारणे भजनां विना स्वविषयावधारणस्यैवाप्रवृत्तेः प्राक् श्यामत्वेन ज्ञाते इदानीम् इति विनिर्मोकेण "न श्यामः" इति बुद्धिवत् प्रवृत्तस्यापि च तस्यान्यथाविषयत्वरूपमिथ्यात्वोपस्थितेः तदिदमुक्तं सम्मतिसूत्रगाथायाम्—

---

* तस्मात् सर्वेऽपि नया मिथ्यादृष्टयः स्वपक्षप्रतिबद्धाः ।
अन्योन्यनिश्रिताः पुनर्भवन्ति सम्यक्त्वसद्भावाः ॥१।२१॥

† णिययवयणिज्जसच्चा सव्वनया परवियालणे मोहा ।
ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा ॥१।२८॥

अस्यार्थः—निजकवचनीये—स्वविषये परिच्छेद्ये । सत्याः—सम्यग्ज्ञानरूपाः । सर्वनयाः—नैगमादयः, सन्ति तद्ग्राहित्वात् । परविचालने—परकीयविषयोच्छेदने । मोहाः—मुग्धानीति तथा असमर्था इति परविषयस्यापि सत्त्वेनोन्मूलयितुमशक्यत्वात्, तदभावे स्वविषयस्याप्यव्यवस्थितेः, परस्परं नान्तरीयकत्वात्, अतः परविषय-स्थापने स्वविषयस्थाप्यमन्त्वात् तदर्थनस्य मिथ्यात्वमेवेत्यवधारयन् दृष्टसमयो ज्ञाताऽनेकान्तः पुनस्तान् नयान् न विभजते सत्यानलीकान् वा किन्त्वितरनयविषयसव्यपेक्षतया 'स्यादेव द्रव्यार्थतः' इत्येवं भजनया स्वनयाभिमतमर्थं सत्यमेवावधारयति, यद्यत्र यदपेक्षा-ऽस्ति तस्य तत्र तदपेक्षया प्रामाण्येन नयप्रामाण्यात् । अत एव च द्रव्यार्थिकादेः प्रत्येकं मिथ्यारूपतया सम्यगनित्यरूपतया चासत्त्वं परिभाषितम्—

† दव्वट्ठियं च एवं णत्थि णओ णियमसुद्धजातीओ ।
ण य पज्जवट्ठिओ णाम कोइ भयणाइ उ विसेसो ॥१।९॥

सम्मतिग्रन्थे ।

प्रागनुभूतरूपाविर्भावनमुत्पादः स्वनान्तरीयकप्राक्पर्यायनाशा-

---

† निजकवचनीयसत्याः सर्वनयाः परविचालने मोघाः ।
तान् पुनर्न दृष्टसमयो विभजते सत्यान् वाऽलीकान् वा ॥१।२८॥

† द्रव्यार्थिक इति तस्मान्नास्ति नयो नियमशुद्धजातिकः ।
न च पर्यायार्थिको नाम कोऽपि भजनया तु विशेषः ॥१।९॥

यच्च पूर्वं शोकप्रमादादिवासनाहेतुकं परिकीर्तितं पूर्वपक्षिणा ननु भिन्नवस्तुनिमित्तकमिति तदयुक्तम्— यतो हि शोकादिजनकत्वेन समनन्तरज्ञानक्षणलक्षणा सा वासना न कदाचिन्निर्हेतुका भवितुमर्हति, निर्हेतुकत्वे तस्या उत्पत्तिशीलत्वे च सदाऽनुत्पत्त्यापत्तिरिति।

व्यवस्थापितश्चायमर्थः —

यतः स्वभावतो जातमेकं नान्यत्ततो भवेत्।
कृत्स्नं प्रतीत्यते भूतिभावत्वात्तत्स्वरूपवत् ॥१॥
अन्यच्चैवंविधं चेति यदि स्यात् किं विरुध्यते।
तत्स्वभावस्य कार्त्स्न्येन हेतुत्वं प्रथमं प्रति ॥२॥

इत्यादिना ग्रन्थेन श्रीहरिभद्रसूरिणाऽनेकान्तजयपताकादौ।

स्याद्वादिनः क्वचिदप्यधिकृते वस्तुनि निश्चयो न युज्यते इति यत्पूर्वपक्षिणोदीरितम् तदपि न समीचीनम्, तस्य निश्चयस्यैकान्तनिबन्धनत्वात्। तथाहि—न तावदस्माकमार्हतानां माने कथञ्चिदमानत्वसमावेशादप्रामाण्यसंशयादर्थानिश्चयः, मानत्वाऽमानत्वयोः कथञ्चिदविरोधात् अवधृतविरोधयोर्धर्मयोरेकत्र धर्मिणि प्रतिभासस्यैव संशयत्वात्, प्रत्यक्षं मानमेवेति कथम्, अनुमानमानत्वाभावात्, प्रत्यक्षस्य स्वमानत्वेनैव मानत्वात्, अनुमानमानत्वेन चामानत्वादिति।

अत्र नैयायिकादयः—"ननु प्रत्यक्षस्यानुमानान्यत्वेऽपि 'प्रत्यक्षं मानमेव' इति प्रयोगो न दुर्घटः," 'न हि मानमेव' इत्यत्र कार्त्स्न्यमेवकारार्थः, कस्याप्येकस्य कृत्स्नमानरूपत्वाभावात्, किन्त्वयोगव्यवच्छेदः, तत्र च व्युत्पत्तिवशाद् मानत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकायोगो परिचितेन दोषः, प्रत्यक्षेऽनुमानत्वावच्छिन्नायोगसत्त्वेऽपि मानत्वावच्छिन्नायोगाभावात्।

अन्येयमेवकारमर्यादाऽवसेया, तथाहि—विशेष्यसङ्गतैवकारस्यान्ययोगव्यवच्छेदोऽर्थः, यथा "पार्थ एव धनुर्धरः" इत्यादौ, विशेषणसङ्गतैवकारस्यायोगव्यवच्छेदोऽर्थः, यथा "शङ्खः पाण्डुर एव" इत्यादौ, क्रियासङ्गतैवकारस्यात्यन्तायोगव्यवच्छेदोऽर्थः, यथा "सरोजं नीलं भवत्येव" इत्यादौ। अत्र तत्तद्विशेष्यसङ्गतैवकारादेस्तत्तदन्ययोगव्यवच्छेदादौ शक्तिरिति ।

अपरे पुनः एवकारस्यात्यन्ताभावः, अन्योन्याभावश्चार्थः । "पृथिव्यां गन्धः" इत्यत्र पृथिवीपदे पृथिव्यन्यस्मिँल्लक्षणया गन्धे प्रकृत्यर्थान्वितविभक्त्यर्थस्य लाक्षणिकार्थान्वितविभक्त्यर्थान्वितस्यैवकारार्थव्यवच्छेदस्य चाऽन्वयः । "पार्थ एव धनुर्धरः" इत्यत्र शक्ये पार्थे विशेषणस्य धनुर्धरस्य तादात्म्येन, लक्ष्ये च पार्थान्यस्मिन् धनुर्धरान्योन्याभावस्याधाराधेयभावेन । "शीत एव स्पर्शो जलवृत्तिः" इत्यत्र शीतपदोपस्थापितयोः शीततदन्ययोरभेदेन स्पर्शेऽन्वयः, शीतान्वितस्पर्शे जलवृत्तितादात्म्यम्, शीतान्यस्पर्शे च जलवृत्तेरन्योन्याभाववत्त्वं प्रतीयते" इति वदन्ति ।

अन्ये च—अन्यो व्यवच्छेदश्च तदर्थः, व्यवच्छेदोऽपि द्वयी अत्यन्ताभावश्च अन्योन्याभावश्च । एवकारे च प्रायेण समभिव्याहृतप्रातिपदिकसमानविभक्तिकत्वम्, विभक्तिश्रवणन्तु न लुप्तत्वात्, स्वभाववैचित्र्याच्च । तदर्थेऽन्यस्यान्वयो न व्यवच्छेदस्य समभिव्याहृतप्रातिपदिकार्थस्य चैवकारोपस्थितेऽन्यस्मिन्नप्यन्वयः, एवमन्वयान्तरनियमोऽपि स्वीयैकार्थान्वितार्थान्तरबोधकत्वमपि तस्य स्वभाववैचित्र्यादेव । एवं "पृथिव्यामेव गन्धः" इत्यत्र पृथिव्यां गन्धः, पृथिव्यन्यस्मिन् न गन्धः इत्यन्वयः । "चैत्रो जलमेव भुङ्क्ते" इत्यत्र चैत्रो जलं

कणाः । "त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणः" इत्यमरः । तस्य—अग्नेः । एव—खलु । पराभवाय—पराजयाय । भवन्ति—जायन्ते । किम्—प्रश्नार्थकमव्ययम् । "किं कुत्सायां वितर्के च निषेधप्रश्नयोरपि" इति मेदिनी । यथाऽग्नेः सकाशादुत्पन्नास्तदंशभूताः स्फुलिङ्गा न तस्यैव पराभवाय भवन्ति प्रत्युत तत्सहायभूता एव जायन्ते तथैव स्याद्वाद-दर्शनस्य पृथगेकदेशभूता एव परेषां नयाः (अंशतः स्याद्वादप्रतिपादकाः साकल्येन तदप्रतिपादकाः) अंशिभूतस्य स्याद्वाददर्शनस्यैव परिक्लेशाय नैव भवितुमर्हन्ति, उपजीव्यविरोधादिति भावः । दृष्टान्तालङ्कारः "दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्" इति तल्लक्षणम् ।

(कल्पलता)

एकश्छेदधिया न गम्यत इह, न्यायेषु बाह्येषु यो,
देशप्रेक्षिषु यश्च कश्चन रसः, स्याद्वादविद्याश्रयाः ?
यः प्रोन्मीलितमालतीपरिमलो-द्गारः समुज्जृम्भते,
स स्वैरं पिचुमन्दकन्दनिकर-क्षोदान्न मोदावहः ॥८॥

अन्वयः—इह, देशप्रेक्षिषु, बाह्येषु, न्यायेषु, यः, च, यः, कश्चन, स्याद्वादविद्याश्रयः, रसः (सः) छेकधिया, एकः, न, गम्यते, यः, प्रोन्मीलितमालतीपरिमलोद्गारः, (मोदावहः) समुज्जृम्भते, सः, स्वैरम्, पिचुमन्द-कन्दनिकरक्षोदात्, मोदावहः, न ।

(कल्पलतावतारिका)

इह—एषु । देशप्रेक्षिषु—देशमेकदेशम्, कञ्चिदेवांशमिति यावत् प्रेक्षन्ते तच्छीला देशप्रेक्षिणः "अजातेः शीले" ५।१।१५४॥ इत्यनेन शीलेऽर्थे णिन् प्रत्ययः, तेषु तथा । बाह्येषु—अनेकान्तबहिर्भूतेषु ।

न्यायेषु-अन्यदर्शनेषु । यः-बुद्धिविषयीभूतः, (रसः-आस्वादः, आनन्द इति यावत्) च-पुनः । यः-बुद्धिविषयीभूतः । कश्चन-अनिर्वचनीयः, अपूर्व इति यावत् । स्याद्वादविद्याश्रयः-अनेकान्तविद्यालम्बनः । रसः-आनन्दः । (सः रसः) छेकधिया-विदग्धबुद्ध्या । एकः-समानः । न-नहि । गम्यते-ज्ञायते । एकान्तविद्यालम्बनो रसोऽन्यः (अपकृष्टत्वाश्रयः) एव स्याद्वादविद्यालम्बनस्तु लोकोत्तरो विलक्षण एव तयोः साम्यलेशो नास्ति, अनेकान्तविद्याया एकान्तविद्यासम्मिश्रणासहिष्णुत्वात्, एतदेव दृष्टान्तेन समर्थयति-यः प्रोन्मीलितमालतीत्यादिना-यः-बुद्धिविषयीभूतः । प्रोन्मीलितमालतीपरिमलोद्गारः-प्रस्फुटितमालतीकुसुमविमर्दोत्थसौगन्ध्योल्लासः । विजृम्भते-विशेषेण स्फुरति, निरतिशयमोददायको भवतीत्यर्थः । सः-तादृशपरिमलोद्गारः । पिचुमन्दकन्दनिकरक्षोदात्-निम्बकन्दकदम्बचूर्णसम्मिश्रणात् । मोदावहः-प्रमोदसम्पादकः । न-नहि । भवतीति शेषः । यथा-प्रोन्मीलितमालतीपरिमलोद्गारः स्वापकृष्टनिम्बकन्दनिकरसम्मिश्रणादशोभनो भवतीति तयोः साम्यं दुर्घटन्तथैव स्याद्वादविद्यालम्बनोऽपि रसः स्वापेक्षयाऽपकृष्टबाह्यदर्शनालम्बनरससम्मिश्रणादशोभन एव भवेदिति स्याद्वादविद्यायाः परम उत्कर्षोऽनेन ध्वन्यते ।

(कल्पलता)

अभ्यास एकः प्रसरद्विवेकः, स्याद्वादतत्त्वस्य परिच्छिदाप्यः ।
कषोपलाद्वेव परः परस्य, निवेदयत्यत्र सुवर्णशुद्धिम् ॥९॥

अन्वयः—स्याद्वादतत्त्वस्य, प्रसरद्विवेकः, एकः, अभ्यासः, परिच्छिदा, आप्यः, अत्र, कषोपलात्, परः, परस्य, सुवर्ण[illegible] व, [illegible] ।

अन्वयः—अत्र, अपि, अन्ये, वर्णयन्ति, सं
भाषितः, दर्शनादिकः, उपायः, विद्यते ।

(अव०) अत्र—मोक्षाभाववादे । अपि—स
परे मोक्षवादिनो जैना इत्यर्थः । वर्णयन्ति—नि
तत्त्वस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदेन शुद्धात्मस्वरूपा
श्रेष्ठः, उत्कृष्ट इति यावत् । सर्वज्ञभाषितः—
पुनरसर्वज्ञभाषितोऽभाषितो वा । दर्शनादिक
रूपः । उपायः—प्राप्तिहेतुः । विद्यते—अस्तीति

अत्र श्लोके मोक्षतत्त्वस्य इति तत्त्वपदे
भावादेव तदुपायः शशशृङ्गोपायतुल्य इति ध्व
समानाधिकरणदुःखप्रागभावासहवृत्तिदुःखध्वंस
यिकमतं न रमणीयम् अतीतदुःखवद् वर्तमान
नाशादपुरुषार्थत्वप्रसङ्गात । न च हेतुविनाशार्थ
श्चित्तवदिति वाच्यम् तथा सति दुःखानुत्पादस्य
वा प्रयोजनत्वप्रसङ्गात् । न च चरमदुःखध्वंसे
तत्त्वज्ञानस्य प्रतियोगिवद् हेतुत्वम् प्रतियोगिनः
दनात्, पुरुषार्थसाधनतया दुःखतत्साधनयोरपि
वाच्यम्, चरमत्वस्याऽऽर्थसमाजसिद्धत्वेन का
अन्त्यदुःखे उपान्त्यदुःखस्यैव हेतुत्वेन तस्य तत्त्व
क्यत्वात्, भोगेनैव कर्मणां नाशो नानाभवभोग्य
मशक्यत्वात, तत्कर्मभोगस्य चापूर्वकर्माजकत्वेन
च तत्त्वज्ञानबलार्जितेन कायव्यूहेन तत्तत्कर्मभोग

समीचीनम्, मनुजादिशरीरसत्त्वे शूकरादिशरीरोत्पादायोगात्, देवादीनां तु वैक्रियशरीरादिकर्मोदयमहिम्नैव नानाशरीरश्रवणोपपत्तेरिति।

"दुःखेनात्यन्तविमुक्तश्चरति" इतिश्रुतिस्तस्माद् दुःखात्यन्ताभाव एव मुक्तिः, दुःखसाधनध्वंस एव च स्ववृत्तिदुःखात्यन्ताभावसम्बन्धः, स च साध्य एव" इति नैयायिकैकदेशमतमपि न समीचीनम्, दुःखसाधनध्वंसस्य दुःखात्यन्ताभावसम्बन्धत्वे मानाभावात्।

"दुःखध्वंसस्तोम एव मुक्तिः" इति केषाञ्चित्तदेकदेशिनां मतमपि नो वार्तम्, स्तोमस्य कथमप्यसाध्यत्वात्।

"आनन्दमयपरमात्मनि जीवात्मलयो मुक्तिः" इति त्रिदण्डिमतमपि न पेशलम्, एकादशेन्द्रियसूक्ष्ममात्रावस्थित पञ्चभूतात्मकलिङ्गशरीरापगमरूपलयस्य नामान्तरेण नामकर्मक्षयरूपत्वादेव यदि चोपाधिशरीरनाशे औपाधिकजीवनाशो लय इत्युच्यते तदा तेन रूपेणाकाम्यत्वादपुरुषार्थत्वात्।

"अनुपप्लवा चित्तसन्ततिर्मुक्तिः" इति बौद्धबुद्धिरपि न सूक्ष्मा सन्ततेरवस्तुत्वेनासाध्यत्वात्। न च सन्ततिपतितक्षणानामेव पूर्वोत्तरभावेन हेतुहेतुमद्भावात् तत्साध्यत्वम्, संसारानुच्छेदप्रसङ्गात्, सर्वज्ञज्ञानचरमक्षणस्यापि मुक्तज्ञानप्रथमक्षणहेतुत्वेन तत्सन्ततिपतितत्वात्।

अथ न हेतुफलभावमात्रादेकसन्ततिव्यवस्था, अपि तूपादानहेतुफलभावात्, न च सर्वज्ञज्ञानस्य चरमक्षण उपादानम्, आलम्बनप्रत्ययो हि सः समनन्तरप्रत्ययश्चोपादानमिति चेत् न तुल्यजातीयस्योपादानत्वे मुक्तचित्तसर्वज्ञज्ञानयोस्तुल्यजातीयत्वानपायात्, सर्वज्ञज्ञानचरमक्षणस्याऽऽद्यमुक्तचित्तानुपादानत्वे तस्यानुपा

(कल्पलता)

शृणु गुणान् वहतां सुकृतस्पृशां, किमुपधेर्वत दुस्त्यजताऽपि न।
अभिनिवेशमपास्य विमृश्यतामिदमुदीरितमुज्ज्वलभावतः ॥६॥

अन्वयः— शृणु, गुणान्, वहताम्, सुकृतस्पृशाम्, उपधेः, अपि, दुस्त्यजता, न, किम्, अभिनिवेशम्, अपास्य, उज्ज्वलभावतः, इदम्, उदीरितम्, विमृश्यताम्।

(कल्पलतावतारिका)

शृणु—समाकर्णय। गुणान्—दयादाक्षिण्यपरोपकारित्वादीन्। वहताम्—संसेवमानानाम्, महात्मनामिति यावत्। उपधेः—वस्त्राद्युपकरणस्य। अपि—खलु। दुस्त्यजता—दुःखेन त्यक्तुं योग्यता। न—नहि। किम्—प्रश्नार्थकमव्ययम्, अपि तु दुस्त्यजतेतिभावः। अभिनिवेशनम्-दुराग्रहम्। पक्षपातमिति यावत्। अपास्य-अपनीय। उज्ज्वलभावतः—विशुद्धभावनातः। इदम्—प्रत्यक्षम्। उदीरितम्—निगदितम्। मयेति शेषः। विमृश्यताम्—विचार्य्यताम्।

(कल्पलता)

दीर्घदेहस्थितेर्हेतो-राहारो दुस्त्यजो यथा।
तथोपकरणं धार्ष्ट्यमुभयत्र समोक्तिकम् ॥७॥

अन्वयः—दीर्घदेहस्थितेः, हेतोः, आहारः, यथा, दुस्त्यजः, तथा, उपकरणम्, धार्ष्ट्यम्, उभयत्र, समोक्तिकम्।

(कल्पलतावतारिका)

दीर्घदेहस्थिते—सुचिरकालपर्य्यन्तशरीरावस्थानात्। हेतोः—कारणात्। आहारः—भोजनम्। यथा—येन प्रकारेण। दुस्त्यजः—

दुःखेन त्युक्तुं योग्यः । तथा—तेन प्रकारेण । उपकरणम्—आचार-साधनं वस्त्रादि । दुस्त्यजमिति शेषः । धाष्टर्यम्—आहारस्य दुस्त्यजत्वं न तूपकरणस्येति वैयात्यम् । उभयत्र—स्थलद्वये । समोक्तिकम्—समा तुल्या उक्तिः कथनं यस्य तत्तथा । उपकरणं सर्वथा दुस्त्यज-मित्यस्मात्स्माभिरपि निगदितुं शक्यत्वात् ।

(कल्पलता)

क्षुत्पीडितार्तध्यानस्य, यथा ह्यशनमौषधम् ।
तथा शीतादिभीताना-मपि वस्त्रादिसेवनम् ॥८॥

अन्वयः—क्षुत्पीडितार्तध्यानस्य, हि, यथा, अशनम्, औषधम्, शीतादिभीतानाम्, वस्त्रादिसेवनम्, अपि, तथा ।

(कल्पलतावतारिका)

क्षुत्पीडितार्तध्यानस्य—क्षुत्पीडितानां बुभुक्षाव्यथितानां यदार्त-ध्यानं तस्य तथा । हि—निश्चयेन । यथा—येन प्रकारेण । अशनम्—भोजनम् । औषधम्—भेषजम् , भवतीति शेषः । शीतादिभीतानाम्—शीतादिवस्तुप्रयोज्यभयवताम् । वस्त्रादिसेवनम्—वस्त्रादिधारणम् । अपि—खलु । तथा—तेन प्रकारेण । औषधरूपमेवेति भावः । क्षुत्पी-डितार्तध्याननिवारणार्थमशनमिव शीतादिभयापनयनार्थं वस्त्रादिसे-वनमप्यौषधरूपमिति वस्त्रादिधारणमावश्यकम् ।

(कल्पलता)

कामिनीविरहसंभवदुष्टध्यानसन्ततिमपासितुमेवम् ।
कामिनीमपि किं न कमनीयां स्वीकुरुध्वमिति चेत्सममेवत् ॥९॥

अन्वयः—एवम् , कामिनीविरहसंभवदुष्टध्यानसन्ततिम् , अपासितुम् कमनीयाम् , कामिनीम् , अपि, किम् , न, स्वीकुरुध्वम् , इति, चेत् ,

एतत्, समम् ।

(कल्पलतावतारिका)

एवम्—अनेन शीतादिभीतसम्बन्धिवस्त्रादिसेवनादिप्रकारेण । कामिनीविरहसम्भवदुष्टध्यानसन्ततिम्—ललनाविप्रयोगजनितदुष्टध्यान-परम्पराम् । अपासितुम्—अपनेतुम्, दूरीकर्तुमिति यावत् । कमनीयाम्—मनोरमाम् । कामिनीम्—अङ्गनाम् । अपि—खलु । किम्—कथम् । न—नहि । स्वीकुरुध्वम्—अङ्गीकुरुध्वम् । इति—एवं प्रकारेण, कथ्यते इति शेषः । एतत्—कामिनीसंसेवनापादनम् । समम्—तुल्यम्, श्वेताम्बरदिगम्बरयोरिति शेषः । तामेव तुल्यतामाह—अन्यथेत्यादि—

(कल्पलता)

अन्यथा पलभुजो न कुतः स्युर्द्विकपटा उचितपिण्डभुजश्चेत् ।
प्रत्युत प्रकटनामसवृत्तेर्भावनं, तत इहापि समानम् ॥१०॥

अन्वयः—अन्यथा, उचितपिण्डभुजः, द्विकपटाः, पलभुजः, कुतः, न, स्युः, प्रत्युत, प्रकटनामसवृत्तेः, भावनम्, चेत्, ततः, इह, अपि, समानम् ।

(कल्पलतावतारिका)

अन्यथा—कामिनीसंसेवनयोरुभयत्र तुल्यत्वाभावे । उचितपिण्ड-भुजः—शुद्धभिक्षाग्रहणशीलाः । द्विकपटाः—[illegible] । पलभुजः—मांसभक्षकाः । कुतः—कस्मात्कारणात् । न—नहि । स्युः—भवेयुः । [illegible] । [illegible] —[illegible]— प्रत्युत—[illegible] [illegible] प्रकटनामसवृत्तेः [illegible]

भावनम्—भावनाजनकम् । भवद्भिः कामिनीविरहसंभवदुर्ध्याननिवारणार्थं कामिनीसेवनस्यावश्यकत्वेऽपि मांसभक्षणेन दुर्भावनाजनकतया नास्माभिस्तत्सेवनमिति । चेत्—यदि । ततः—तस्मात् । इह—अस्मिन्, कामिनीसंसेवने । अपि—खलु । समानम्—तुल्यम् । कामिनीसेवनस्यापि व्यामोहादिजनकतयाऽस्माभिस्त्याज्यत्वमिति भावः । कामिनीसेवनस्य व्यामोहजनकत्वमुपपादयति— सङ्गमङ्गेत्यादिना—

(कल्पलता)

सङ्गमङ्ग ! समवाप्य तरुण्याः, कस्य नाम न मनः कलुषं स्यात् ।
निर्मलान्यपि जलानि न किं स्युः, पङ्कसङ्करवशाद् मलिनानि ॥११॥

अन्वयः—अङ्ग ! तरुण्याः, सङ्गम्, समवाप्य, कस्य, नाम, मनः, कलुषम्, न, स्यात्, निर्मलानि, अपि, जलानि, पङ्कसङ्करवशात्, मलिनानि, न, स्युः, किम् ।

(कल्पलतावतारिका)

अङ्ग !—आमन्त्रणार्थकमव्ययम् । तरुण्याः—लावण्यशालिन्या अङ्गनायाः । सङ्गम्—सम्पर्कम् । समवाप्य—समधिगत्य । नाम—कोमलामन्त्रणे । कस्य—यस्य कस्य । मनः—हृदयम् । कलुषम्—कालुष्यकरम्बितम्, व्यामोहापन्नमिति यावत् । न—नहि । स्यात्—भवेत् । अपि तु सर्वस्यापीति भावः । दृष्टान्तेन समर्थयति निर्मलान्यपीत्यादि—निर्मलानि—स्वच्छानि । अपि—खलु । जलानि—सलिलानि । पङ्कसङ्करवशात्—कर्दमसम्मिश्रणाधीनत्वात् । मलिनानि—मलीमसानि, कलुषाणीति यावत् । न—नहि । स्युः—भवेयुः । किम्—प्रश्नार्थकमव्ययम् । अपि तु भवन्त्येवेति भावः । तामसवृत्ति-

[illegible]

[illegible] उपमालङ्कारः ।

(कल्पलता)

व्याधयोऽरसभुवो विषवल्ल्योऽभूमिका अशनयोऽगगनोत्थाः ।
मूर्तिमत्य इव मारणविद्याः किं न ता निगदिताः श्रुतवृद्धैः ॥१२॥

अन्वयः— अरसभुवः, व्याधयः, अभूमिकाः, विषवल्ल्यः, अगगनोत्थाः अशनयः, ताः, श्रुतवृद्धैः, मूर्तिमत्यः, मारणविद्याः, इव, न, निगदिताः, किम्।

(कल्पलतावतारिका)

अरसभुवः—असम्भवादिरसजनिताः । व्याधयः—रोगाः, तद्रूपा इत्यर्थः । अभूमिकाः—अभूम्युत्पन्नाः । विषवल्ल्यः—गरलवल्लरीरूपाः । अगगनोत्थाः—अनाकाशोत्पतिताः । अशनयः वज्ररूपाः । ताः—बुद्धिविषयीभूताः कामिन्यः । श्रुतवृद्धैः—शास्त्रकारप्रवरैः । मूर्तिमत्यः—शरीरधारिण्यः । मारणविद्याः—तदाख्यविद्याः । इव—यथा । न—नहि । निगदिताः—प्रतिपादिताः । किम्—प्रश्नार्थकमव्ययम् । अपि तु निगदिता एवेति तास्त्याज्याः सर्वैरिति भावः । उपमाधिकारूढवैशिष्ट्यरूपकालङ्कारौ ।

तस्माद् विहिताहारवत् विहितस्योपकरणस्यापि दुर्ध्यानहतिशुभध्यानोत्पत्तिहेतुत्वाद् युक्तं यतीनां तत्परिशीलनम् । विधिश्चात्र • "तिहिं ठाणेहिं वत्थं धरेज्जा, हिरिवत्तियं दुगंछावत्तियं परीसहवत्तियं" तथा—

• त्रिभिः स्थानैर्वस्त्रं धारयेत् , ह्रीप्रत्ययम् जुगुप्साप्रत्ययम् परीषहप्रत्ययम् ।

* जं पि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुंछणं ।
तं पि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति अ ॥

एवञ्चादग्धदहनन्यायेन यावदप्राप्तं तावद् विधेयम्, इति वस्त्रधारणस्य लोकत एव प्राप्तत्वात् ह्रीकुत्सापरीषहनिमित्तं तद्ग्रहणं नियम्यते, तत्र च निमित्तत्रयमपि जिनकल्पायोग्यानां निरतिशयानामधिकारिणामावश्यकम् ।

अथ ज्ञानादिपुष्टालम्बनेनाहारग्रहणे न दोषः, वस्त्रादेस्तु मलादिदिग्धस्य यूकादिसंमूर्च्छनानेकसत्त्वहेतुतया तद्ग्रहणे तद्व्यापत्तेरवश्यं भावात् तद्ग्रहणमपौष्टालम्बनिकत्वाद् न न्याय्यमिति चेत् न आहारग्रहणेऽप्यस्य दोषस्य समानत्वात् संभवन्त्येव ह्यागन्तुकाः संमूर्च्छनजाश्चानेकप्रकारास्तत्र जन्तवः, तत्परिभोगे चावश्यं भावी तेषां विनाशः, भुक्तस्य च कोष्ठगतस्य संसक्तिमत्त्वात् तदुत्सर्गेऽनेककृम्यादिव्यापत्तिरवश्यंभाविनीति ।

यदपि च कथं द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतो वा कृतपरिग्रहप्रत्याख्यानस्य वस्त्रोपादाने न पञ्चममहाव्रतभङ्गः ? इत्युक्तम्, तदपि मूर्च्छापरित्यागे भावतः परिग्रहप्रत्याख्यानोपपत्तावपि द्रव्यतः परिग्रहप्रत्याख्यानभङ्गाभिप्रायेणावगन्तव्यम् ।

यदपि च "कथं चैवं परद्रव्यरतिसाम्राज्ये स्वात्मप्रतिबन्धमात्रविश्रान्तश्रामण्यसमृद्धिः ?" इत्युक्तम् तदप्ययुक्तम् परद्रव्यसन्निधानमात्ररूपाया रतेर्मुक्तावप्यनुच्छेदात् अभिष्वङ्गरूपाया रतेस्तु धर्मोपकरणेऽभावात् अभिष्वङ्गविषयस्य सतः शरीरादेरप्यधर्मोपकरणत्वात् ।

* यदपि वस्त्रं च पात्रं वा कम्बलं पादप्रोञ्छनम् ।
तदपि संयमलज्जार्थं धारयन्ति परिहरन्ति च ॥इति॥

* जं पि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुंछणं ।
तं पि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति अ ॥

एवञ्चादग्धदहनन्यायेन यावदप्राप्तं तावद् विधेयम्, इति वस्त्रधारणस्य लोकत एव प्राप्तत्वात् ह्रीकुत्सापरीषहनिमित्तं तद्ग्रहणं नियम्यते, तत्र च निमित्तत्रयमपि जिनकल्पायोग्यानां निरतिशयानामधिकारिणामावश्यकम् ।

अथ ज्ञानादिपुष्टालम्बनेनादुष्टाहारग्रहणे न दोषः, वस्त्रादेस्तु मलादिदिग्धस्य यूकादिसंमूर्च्छनानेकसत्त्वहेतुतया तद्ग्रहणे तद्व्यापत्तेरवश्यं भावात् तद्ग्रहणमपौष्टालम्बनिकत्वाद् न न्याय्यमिति चेत् न आहारग्रहणेऽप्यस्य दोषस्य समानत्वात् संभवन्त्येव ह्यागन्तुकाः संमूर्च्छनजाश्चानेकप्रकारास्तत्र जन्तवः, तत्परिभोगे चावश्यं भावी तेषां विनाशः, भुक्तस्य च कोष्ठगतस्य संसक्तिमत्त्वात् तदुत्सर्गेऽनेककृम्यादिव्यापत्तिरवश्यंभाविनीति ।

यदपि च कथं द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतो वा कृतपरिग्रहप्रत्याख्यानस्य वस्त्रोपादाने न पञ्चममहाव्रतभङ्गः ? इत्युक्तम्, तदपि मूर्च्छापरित्यागे भावतः परिग्रहप्रत्याख्यानोपपत्तावपि द्रव्यतः परिग्रहप्रत्याख्यानभङ्गाभिप्रायेणावगन्तव्यम् ।

यदपि च "कथं चैवं परद्रव्यरतिसाम्राज्ये स्वात्मप्रतिबन्धमात्रविश्रान्तश्रामण्यसमृद्धिः ?" इत्युक्तम् तदप्ययुक्तम् परद्रव्यसन्निधानमात्ररूपाया रतेर्मुक्तावप्यनुच्छेदात् अभिष्वङ्गरूपाया रतेस्तु धर्मोपकरणेऽभावात् अभिष्वङ्गविषयस्य सतः शरीरादेरप्यधर्मोपकरणत्वात् ।

---

* यदपि वस्त्रं च पात्रं वा कम्बलं पादप्रोञ्छनम् ।
तदपि संयमलज्जार्थं धारयन्ति परिहरन्ति च ॥इति॥

श्रम् । नास्तिकत्वम्—सर्वज्ञाभावस्वीकरणजनिताऽऽस्तिकत्वाभावः । आपतति—समागच्छति । वेदनैपुणपटाऽपगमेन—वेदे नैपुणं प्रावीण्यमेव नास्तिकत्वाच्छादकत्वात् पटो वस्त्रम् तस्यापगमो दूरीकरणम् वेदनैपुणपटापगमस्तेन तथा । अनेकसमक्षम्—बहुजनप्रत्यक्षम् । तत्—तादृशनास्तिकत्वम् दर्शयन्ति—प्रकटीकुर्वन्ति सिद्धान्तिन आर्हता इति शेषः ।

अथ मीमांसकाक्षेपसमाधानम्—

(शास्त्रवार्ता०)

अत्रापि ब्रुवते केचिदित्थं सर्वज्ञवादिनः ।
प्रमाणपञ्चकाऽवृत्तिः, कथं तत्रोपपद्यते ॥१२॥

अन्वयः— अत्र, अपि, सर्वज्ञवादिनः, केचित् इत्थम् , ब्रुवते, तत्र, प्रमाणपञ्चकावृत्तिः, कथम् , उपपद्यते, इति ।

(अव०) अत्र—मीमांसकानां सर्वज्ञाभाववादे । अपि—खलु । सर्वज्ञवादिनः—सर्वज्ञास्तित्वमन्तारः । केचित्—अनिर्ज्ञातसामान्याः, जैना इति यावत् । इत्थम्—एवम् । ब्रुवते—निगदन्ति । यत्, तत्र—बुद्धिविषयीभूते सर्वज्ञे । प्रमाणपञ्चकावृत्तिः—अभावप्रमाणोत्थापिका प्रमाणपञ्चकाऽविषयता । कथम्—केन प्रकारेण । उपपद्यते-संगच्छते, उपपन्ना भवतीति यावत्, नैवोपपद्यते इति भावः ।

तथाहि—सर्वज्ञनिषेधकारिप्रत्यक्षं चेद्विश्वगोचरम् तदा सर्वज्ञाभावोऽसिद्धः, विश्वगोचरज्ञानाश्रयस्यैव सर्वज्ञत्वात्, न चेत्तत्प्रत्यक्षं सर्वार्थविषयम् तदाऽपि सर्वज्ञाभावोऽसिद्ध एव, प्रत्यक्षेण सतोऽप्यर्थ-

❀ अथैकादशः स्तवकः ❀

नवाङ्गी चिकीर्षितमभिप्रतिबन्धकदुरितोपशमनाय मङ्गलाथ [illegible] निर्दिशन्त्युपाध्यायाः—

(कल्पलता)

अपापायामायानुसृतमतिरभ्येत्य सदनं,
क्षमाया निर्मायापहृतमदमायान् गणभृतः।
सभायामायातान् य इह जनतायां मुदमदा-
दपायात्पापाद्वो जिनवृषभवीरः स सततम् ॥१॥

अन्वयः—आयानुसृतमतिः, अपापायाम्, क्षमायाः, सदनम्, अभ्येत्य, सभायाम्, आयातान्, गणभृतः, आहृतमदमायान्, निर्माय, यः, इह, जनतायाम्, मुदम्, अदात्, सः, जिनवृषभवीरः, सततम्, वः, अपायात्, पापात्।

(कल्पलतावतारिका)

आयानुसृतमतिः – आयं शिष्यसम्पत्तिलाभमनुसृताऽनुगता मतिर्बुद्धिर्यस्य स तथा। शिष्यसम्पत्तिलाभमनुसन्धान इत्यर्थः। अपापायाम् – तदभिधानायां नगर्याम्, अधुना "पावापुरी" [illegible]। क्षमायाः – [illegible]। सदनम् – [illegible]। अभ्येत्य – गत्वा। [illegible] इत्यर्थः। सभायाम् – [illegible], समवसरणे इति [illegible]। आयातान् – [illegible]। गणभृतः – [illegible] एकादश [illegible] आहृतमदमायान् [illegible]। निर्माय – [illegible]। यः – [illegible] इह [illegible] जनतायाम् – [illegible]। मुदम् -

सदुपदेशगणधरप्राप्त्युभयप्रयोज्यं हर्षम् । अदात्--व्यतरत् । सः--तादृशः । जिनवृषभवीरः--अर्हच्छ्रेष्ठो भगवान् वर्द्धमानो महावीरस्वामी । सततम्--अनिशम् । वः--युष्मान् - श्रद्धासम्पन्नान्-भक्तजनानिति यावत् । अपायात्--विनाशात् । पायात्--रक्षतात् । अनुप्रासः शब्दालङ्कारः । स चैकवर्णस्यानेकश आवृत्त्या वृत्त्यनुप्रासात्मकः, छेकानुप्रासश्च । श्रीमच्चरमतीर्थकृद्विषयकः कविनिष्ठो रत्याख्यो भावश्चाभिव्यज्यते इति ध्वनिकाव्यमिदम् ।

(कल्पलता)

प्रत्यूहापोहमन्त्रः सकलजनवशीकारकृत्सिद्धविद्यो,
दुर्नीतिव्याधिदिव्यौषधमधमजनव्यालपारीन्द्रनादः ।
अज्ञानध्वान्तधारारविकिरणभरो यस्य नामार्थसिद्धिं,
दत्ते विश्वस्य शाश्वत् स भुवि विजयतामाश्वसेनिर्जिनेन्द्रः ॥२॥

अन्वयः—सकलजनवशीकारकृत्सिद्धविद्यः, प्रत्यूहापोहमन्त्रः, दुर्नीतिव्याधिदिव्यौषधम्, अधमजनव्यालपारीन्द्रनादः, अज्ञानध्वान्तधारारविकिरणभरः, यस्य, नाम, शाश्वत्, विश्वस्य, अर्थसिद्धिम्, दत्ते, सः, आश्वसेनिः, जिनेन्द्रः, भुवि, विजयताम् ।

(कल्पलतावतारिका)

सकलजनवशीकारकृत्सिद्धविद्यः--सकलजनानां निखिललोकानां वशीकारो वशीकरणम् सकलजनवशीकारकृत् तथा सिद्धा निष्पन्ना विद्या ज्ञानं यतः स तथा । प्रत्यूहापोहमन्त्रः--विघ्ननिवारणमन्त्ररूपम्, नामविशेषणवाचकत्वेऽपि मन्त्रशब्दस्य नित्यपुल्लिङ्गतया तथा

शात्, शक्तिलक्षणान्यतरत्वेन प्रयोजकत्वापेक्षया शक्तित्वेनैव तत्त्वौचित्याच्च । नचैवं समयस्य क्षयोपशमार्थत्वे सर्वत्र गलितावरणानां योगिनां वाचकप्रयोगार्थं तदपेक्षा न स्यादिति वाच्यम् इष्टत्वात् समयापेक्षणं विनैव स्वयमेव योगिनां वाच्यवाचकभावं ज्ञात्वा वाचकप्रयोगात् । एवञ्च बौद्धपरिकल्पितस्यापोहस्य वाच्यत्वं युक्त्या नोपपद्यते, वस्तुभिन्नतया तस्याऽसत्त्वात्, विजातीयव्यावृत्तेरपि समानपरिणतिरूपतया वस्तुवाच्यत्वपक्षप्रसङ्गात्, तुच्छस्य वस्तुना सम्बन्धायोगात्, विकल्पबुद्ध्यभिन्नस्यापि तस्यापोहस्य भेदेनासत्त्वादद्वयबोधात् । अपि च लिङ्गसंख्यादियोगोऽप्यनन्तधर्मात्मकबाह्यवस्तुसमाश्रित एवेति नापोहस्य वाच्यत्वम्, एकत्र स्त्रीपुन्नपुंसकाख्यभावत्रयस्य, एकत्वद्वित्वादिसंख्यायाश्चाविरोधात्, यथाविवक्षितमनन्तधर्माध्यासिते वस्तुनि कस्यचिद्धर्मस्य केनचिच्छब्देन प्रतिपादनात्, प्रतिनियतोपाधिविशिष्टवस्तुप्रतिभासस्य प्रतिनियतक्षयोपशमविशेषनिमित्तत्वेन शबलाभासानापत्तेः । अपि च शब्दस्य बहिरर्थाप्रतिपादकत्वेऽदृष्टेषु नदीदेशपर्वतद्वीपादिष्वाप्तप्रणीतत्वेन निश्चिताच्छब्दात् प्रतिपत्तिर्न स्यात्, अदृष्टे विकल्पानुपपत्तेरिति विस्तरेण स्याद्वादकल्पलतायामाकलनीयम् ।

अथ "ज्ञानक्रियाभ्यां मुक्तिः" इत्यत्र नयमतजनितं वार्तान्तरमुत्थापयति —

(शास्त्रवार्ता०)

ज्ञानादेव नियोगेन, सिद्धिमिच्छन्ति केचन ।
अन्ये क्रियात एवेति, द्वाभ्यामन्ये विचक्षणाः ॥३०॥

अन्वयः—केचन, ज्ञानात्, एव, निर्योगेन, सिद्धिमिच्छन्ति, अन्ये, क्रियाः, एव, इति, अन्ये, विचक्षणाः, द्वाभ्याम् ।

(अर्थः) केचन—ज्ञानवादिनः । ज्ञानात्—तत्त्वज्ञानात् । एव—मात्रम् । निर्योगेन—कष्टाभावेन । सिद्धिम्—मुक्तिम् । इच्छन्ति—वाञ्छन्ति, स्वीकुर्वन्तीति यावत् । अन्ये—क्रियावादिनः । क्रियाः—क्रियायाः । एव—मात्रम्, मुक्तिः, इति—एवं प्रकारेण । इच्छन्तीति शेषः । अन्ये—ज्ञानक्रियावादिनः । विचक्षणाः—विद्वांसः, उभयसमर्थनात् पक्षान्तरनिपुणाः इति यावत् । द्वाभ्याम्—सम्मिलिताभ्यां ज्ञानक्रियाभ्याम् । इच्छन्ति सिद्धिमिति शेषः ।

तथाहि—फलार्थिनां पुंसां ज्ञानमेव फलदं भवति, फलोपायं प्रमाय प्रवर्तमानानां फलाव्यभिचारदर्शनात्, तथाऽप्रमाय (मिथ्याज्ञानात्) प्रवृत्तस्य पुरुषस्य फलप्राप्त्यभावात्, न हि मृगतृष्णिकाजलज्ञानवतस्तस्यापि तद्व्याप्तिरिति । आगमेऽप्युक्तम् "पढमं नाणं तओ दया" इत्यादि । ज्ञानोत्कर्षाभ्यां फलोत्कर्षापकर्षयोरपि ज्ञानस्यैव फलहेतुत्वम्, क्रियोत्कर्षापकर्षयोस्तत्रानन्तर्भावात् । अत एव ज्ञानहीना महाक्रिया अपि अतिचिरकालं फलप्राप्त्यपराङ्मुखा दृश्यन्ते, ज्ञानवन्तोऽल्पक्रिया अपि ज्ञानबलेन विशिष्टफलयोगेन सुखिनो भवन्ति, न तु क्रियोत्कर्षादुत्कृष्टफलभाजो भवन्ति । एवं केवलेऽपि ज्ञानभावे मुक्तिर्भवति, अन्यथा क्रियावतोऽपि यत्नेनापि न भवति, तस्मादपि मुक्तिर्ज्ञानादेव न तु क्रियात इति सिद्धं भवति ।

क्रियावादिनश्च—प्रवृत्तिलक्षणा क्रियैव फलार्थिपुरुषाणां फलदा भवति, न तु ज्ञानं फलदम्, यस्मात् स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो जनः स्त्रीभक्ष्य-

भोगज्ञानमात्रान्न सुखितो भवति किन्तु स्त्रं भक्ष्यभोगेनैवेति । अत एव व्यापारविरहिता ज्ञानिनोऽप्यालस्योपहताः सुखसम्पद्विवर्जिता लोके पश्यतां प्राणिनां करुणाभाजनं दृश्यन्ते, व्यापारप्रवणा हि क्रियासामर्थ्यात् विशिष्टफलसिद्धेर्मूर्खा अपि सन्तो भूयांसः पण्डिताधिपतयोऽपापाश्च दृश्यन्ते, ततः फलसिद्धावतन्त्रं ज्ञानम्, आगमेऽपि क्रियाया एव प्राधान्यमुक्तम् । तथाहि—

* सुबहुंपि सुअमहीअं, किं काही चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्स-कोडीवि ॥१॥

ज्ञानोत्कर्षादेव मुक्तिर्नतु क्रियोत्कर्षादिति पूर्वोक्तं न समीचीनम्, सर्वज्ञस्यापि शैलेशीकरणाख्यव्यापारोत्कर्षे सत्येव मुक्तिः, शैलेश्या अर्वाक् केवलित्वेऽपि सति मुक्तिर्न भवतीत्यतो मुक्तिः क्रियानिमित्तिकैव ।

उभयवादिनश्च सर्वमेव पुरुषार्थत्वेन व्यवह्रियमाणं ज्ञानक्रियायोगे एव समुत्पद्यते, विशिष्टफलमधिकृत्य प्रत्येकं देशोपकारितायाः समुदाये सम्पूर्णतोपपत्तेः । उक्तं च भाष्यकृता—

† वीसुंण सव्वहच्चिय, सिकतातेल्लं व साहणाभावो ।
देसोवगारिया जा सा, समवायम्मि संपुण्णा ॥

अथ सम्पूर्णता फलोपहितहेतुत्वम्, देशोपकारिता च हेतुत्वमात्रम् तच्च न पृथक् ज्ञानक्रिययोः परस्परमुक्तदोषात्, तथा च कथं

---

* सुबहपि श्रुतमधीतं किं करिष्यति चरणविप्रहीनस्य ।
अन्धस्य यथा प्रदीप्ता दीपशतसहस्रकोटिरपि ॥

† विष्वग् न सर्वथैव सिकतातैलमिव साधनाभावः ।
देशोपकारिता या सा समवाये सम्पूर्णा ॥

समवाये पूर्णता ? इति चेन्न प्रत्येकमपि ज्ञानक्रिययोर्द्वयोरन्वयव्यतिरेकानुविधानाविशेषेण हेतुत्वात्, असम्यग्ज्ञाने फलव्यभिचारस्य चासम्यक्क्रियायामपि तुल्यत्वादिति भावः। ज्ञानक्रिययोरपि निश्चयेन ज्ञानक्रियाव्यपदेशात्, फलानुपहितस्य सतोऽकारणत्वात्, कुशूलस्थबीजाबीजयोरविशेषात्, कारणस्य च सतः फलोपहितत्वात् क्षेत्रस्थबीजवत्।

तथा चाभियुक्ताः —

साध्यमर्थं परिज्ञाय, यदि सम्यक् प्रवर्तते।
ततस्तत् साधयत्येव, तथा चाह बृहस्पतिः ॥१॥
सम्यक् प्रवृत्तिः साध्यस्य प्राप्त्युपायोऽभिधीयते।
तदप्राप्तावुपायत्वं न तस्या उपपद्यते ॥२॥
असाध्यारम्भिणस्तेन सम्यग्ज्ञानं न जातुचित्।
साध्यानारम्भिणश्चेति द्वयमन्योन्यसङ्गतम् ॥३॥
अत एवाऽऽगमज्ञस्य या क्रिया सा क्रियोच्यते।
आगमज्ञोऽपि यस्तस्यां यथाशक्ति प्रवर्तते ॥४॥

प्रज्ञापनासूत्रे तीर्थादिभेदात् पञ्चदशविधाः सिद्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तीर्थसिद्धाः, अतीर्थसिद्धाः, तीर्थकरसिद्धाः, अतीर्थकरसिद्धाः, स्वयंबुद्धसिद्धाः, प्रत्येकबुद्धसिद्धाः, बुधबोधितसिद्धाः, स्त्रीलिङ्गसिद्धाः, पुरुषलिङ्गसिद्धाः, नपुंसकलिङ्गसिद्धाः, स्वलिङ्गसिद्धा, अन्यलिङ्गसिद्धाः, गृहिलिङ्गसिद्धाः, एकसिद्धाः, अनेकसिद्धाः (१५) इति। तत्र तीर्थे चतुर्वर्णश्रमणसंघरूपे चोत्पन्ने सति सिद्धास्तीर्थसिद्धाः, तीर्थस्याभावेऽनुत्पत्तिलक्षणे आन्तरालिकव्यवच्छेदलक्षणे वा सति सिद्धा अतीर्थसिद्धा मरुदेव्यादयः, सुविधिस्वाम्याद्यपान्तराले विरज्याप्तमहोदयाश्च।

तीर्थकरा प्राप्तजिननामोदयार्जितसमृद्धयः सन्तः सिद्धास्तीर्थकर-सिद्धाः, अतीर्थकरसिद्धाः, सामान्यकेवलिनः सन्तः सिद्धा अतीर्थ-करसिद्धाः । स्वयमेव बाह्यप्रत्ययमन्तरेणैव निजजातिस्मरणादिना बुद्धाः सन्तः सिद्धाः स्वयंबुद्धसिद्धाः, ते च तीर्थकरातीर्थकरभेदेन द्विविधाः । प्रत्येकं बाह्यं वृषभादिकारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः सन्तः सिद्धाः प्रत्येकबुद्धसिद्धाः । बुद्धैर्गुर्वादिभिर्बोधिताः सन्तः सिद्धा बुद्ध-बोधितसिद्धाः । स्त्रिया लिङ्गं स्त्रीलिङ्गम् , स्त्रीत्वस्योपलक्षणमित्यर्थः । तच्च त्रिधा वेदः, शरीरनिर्वृत्तिः, नेपथ्यश्चेति । इह च शरीरनिर्वृत्त्यै-वाधिकारो न वेदनेपथ्याभ्याम् , तयोर्मोक्षानङ्गत्वात् , ततस्तस्मिँल्लिङ्गे वर्तमानाः सन्तः सिद्धाः स्त्रीलिङ्गसिद्धाः, तथा पुंलिङ्गे पुंशरीरनिर्वृत्ति-रूपे व्यवस्थिताः सन्तः सिद्धाः पुंल्लिङ्गसिद्धाः । एवं नपुंसकशरीरे व्यवस्थिताः सन्तः सिद्धा नपुंसकलिङ्गसिद्धाः । स्वलिङ्गे रजोहरणादि-रूपे व्यवस्थिताः सन्तः सिद्धाः स्वलिङ्गसिद्धाः । अन्यलिङ्गे परि-व्राजकादिसम्बन्धिन्येव व्यवस्थिताः सिद्धा अन्यलिङ्गसिद्धाः । गृहि-लिङ्गे व्यवस्थिताः सिद्धा गृहिलिङ्गसिद्धा मरुदेव्यादयः । एकस्मिन् समये एकका एव सन्तः सिद्धा एकसिद्धाः । एकस्मिन् समये अनेकैः सह सिद्धा अनेकसिद्धा, इति सम्प्रदायः ।

अत्र प्रत्यवतिष्ठन्तेऽभिनिवेशपेशलचित्ताः क्षपणकाः-"स्त्रीलिङ्ग-सिद्धाः" इत्यत्र पूर्वं क्षीणस्त्रीवेदाः सन्तः सिद्धाः इत्यमर्थ आश्रय-णीयः, लिङ्गपदेन मोक्षानङ्गस्यापि वेदस्यात्रोपादानात् , अतीर्थकर-सिद्धादाविव मोक्षाङ्गोपाध्युपादाने नियमाभावात् , स्त्रीशरीरावस्थितास्तु न मुक्तिभाजः स्त्रीत्वात् व्यतिरेके पुरुषवत् । अथवा स्त्रियो मोक्षभाजो न भवन्ति विशिष्टपूर्वाध्ययनलब्ध्यभाववत्त्वात् , अभव्यवत्, इति ते

न च स्त्रीणां [illegible] मायाप्रकर्षस्य [illegible], न च तत्प्रकर्ष-निबन्धनाप्रतिपत्ति[illegible] चेत् न, [illegible] नार-दादीनां मायादिप्रकर्ष[illegible] । तेषां [illegible] माया न चारित्र-विरोधिनीति चेत् [illegible] किं न तथा ? न च सर्वासां मायाप्रकर्षनियमोऽपि, [illegible] अपि तस्या (मायायाः) भूयसीषु विपरीतपरिणामेन निवृत्तिदर्शनात् । एतेन "स्त्रियो न चारित्रपरिणामयोग्याः पुरुषापेक्षया तीव्रकामत्वात् नपुंसकवत्" इत्य-पास्तम्। तीव्रस्यापि कामस्य भूयसीसु तासु श्रुतपरिशीलन-साधूपा-सनादिप्रसूतविपरीतपरिणामेन निवृत्तिदर्शनात । न च मिथ्यात्व-सहायेन महापापेन स्त्रीत्वस्य निवर्तनाद् न स्त्रीशरीरवर्तिन आत्म-नश्चारित्रप्राप्तिरिति शङ्कनीयम् , सम्यक्त्वप्रतिपत्त्यैव मिथ्यात्वादीनां क्षयादिसम्भवात , आस्त्रीशरीरं तदनुवृत्तौ तस्याः सम्यक्त्वादेरप्यपला-पप्रसङ्गात । उक्तञ्च "सम्यक्त्वप्रतिपत्तिकाल एवान्तःकोटिस्थिति-कानां सर्वकर्मणां भावेन मिथ्यात्वमोहनीयादीनां क्षयादिसम्भवात ।" न च कक्षस्तनादिदेशेषु संसजनाद्यशुद्धेः प्राणातिपातबहुलत्वान्न तासां चारित्रमिति वाच्यम् , शुद्धशरीराया अपि भूयस्या दर्शनात, प्राणातिपातपरिणामाभावात । यदि च स्त्रीणां चारित्रं न स्यात्तदा "साधुः साध्वी श्रावकः श्राविका" इति चतुर्विधसंघव्यवस्थोत्सीदेत् । अथाणुव्रतधारिणी श्राविकाऽपि साध्वीतिव्यपदेशं भजत इति न दोष इति चेत् हन्त ! तर्हि केवलसम्यक्त्वधारिण्येव श्राविकाव्यप-देशमासादयेत, एवञ्च श्रावकेष्वपि तथा द्वैविध्यप्रसङ्गेन संघस्य पञ्चविधत्वमापद्येत । अथ वेषधारिणी श्राविका साध्वीति व्यप-दिश्यते श्रावकस्तु तथाभूतो वस्तुतो यतिरेवेति चातुर्विध्यं व्यवतिष्ठते

इति चेन्न मुख्यं विना वेषधारणे विडम्बकस्येव सेति । अथ—पुरुषानभिवन्द्यत्वात् स्त्रीणां न मुक्तिरिति चेन्न, भगवज्जनन्यादीनां जगद्वन्द्यत्वश्रवणात् । आचार्यानभिवन्द्यत्वेन शिष्ये साधुमात्रानभिवन्द्ये शैक्षे वा व्यभिचारात्, पुरुषानभिवन्द्यत्वस्य मुक्तिप्राप्त्यप्रतिबन्धकत्वेनाप्रयोजकत्वाच्च । यदि च तदनभिवन्द्यत्वेन तदपेक्षयाऽनुत्तमगुणत्वाद् न स्त्रीणां मुक्तिरितीष्यते तदा तीर्थकृद्गुणापेक्षया गणधरादेरप्यनुत्तमत्वाद् मुक्तिप्राप्तिर्न भवेत् ।

अथाशेषकर्मक्षयनिबन्धनस्याध्यवसायस्य गणधरादिषु तीर्थकृदपेक्षया तुल्यत्वादयमदोषः तदा समानमेतदार्यिकास्वपि । यदि च तीर्थस्य भगवदभिवन्द्यत्वात् प्रथमगणधरस्यापि तीर्थशब्दाभिधेयत्वेन तथात्वाद् न दोषः, तदा चातुर्वर्ण्यश्रमणसंघस्यापि तत्रान्तर्भावात् समानमेव ।

अथाकल्याणभाजनत्वाद् स्त्रियो न मुक्तियोग्या इति चेत् न, तीर्थकरजननात् नहतः परं कल्याणमस्ति लोके । हीनबलत्वादेव स्त्रीणां न मुक्तिरिति चेन्न, रत्नत्रयसाम्राज्ये हीनबलत्वस्याप्रयोजकत्वात्, अन्यथा स्त्रीभ्योऽपि हीनबलाः पङ्ग्वादयः पुरुषा रत्नत्रयसाम्राज्येऽपि न मुच्येरन् । हीनबलानां विशिष्टचर्यारूपं चारित्रमेव न स्यादिति चेन्न, यथाशक्त्याचरणरूपस्य सत्त्वसाध्यस्य तस्य तासामप्यविरोधात् । न हि दुर्धरब्रह्मचर्यधारिणीनामसदभियोगादौ तृणवत्प्राणपरित्यागं कुर्वाणानां सत्त्वं तासां नातिरिच्यत इति वक्तुं शक्यम् । नचानुपस्थाप्यतापाराञ्चितकानुपदेशेन तासु सत्त्वहीनता सिद्ध्यति सत्त्वापेक्षयैव शास्त्रे विशुद्ध्यनुपदेशात्, योग्यतापेक्षयैव तत्र तद्वैचित्र्योपदेशात् । उक्तञ्च—

[illegible] [illegible] [illegible] शास्त्रे ।
[illegible], [illegible] ॥

एवं तत्त्वाभिमतेऽनुमानमपि प्रमाणम्, तथाहि— मनुष्यस्त्रीजाति-र्मुक्त्युपहितव्यक्तिमती प्रव्रज्याधिकारिजातित्वात् पुरुषजातिवत् इति। न च तासां प्रव्रज्याधिकारस्य पारम्पर्येणैव मोक्षहेतुतया निर्वाणाद्-प्रयोजकत्वम्? [illegible] तद्धेतुदेशविरत्याद्यावेव प्रवृत्तिः स्यान्न तु प्रव्रज्याग्रहणमनर्थकमेवेति वाच्यम्, देशविरत्यादिभूयो-भवघटितपारम्पर्येण मोक्षहेतुत्वेऽपि चारित्रस्यैवाल्पभवघटितपारम्प-र्येण मोक्षहेतुत्वात्, तादृशपारम्पर्येण मोक्षार्थितया तत्र प्रवृत्तेर्युक्त-त्वात्, कथमन्यथा दुःषमाकालवर्तिनो मुमुक्षवस्तत्र प्रवर्तिष्यन्ते? इति वाच्यम्। तासां चारित्रस्य पारम्पर्येणैव मोक्षहेतुत्वाश्रवणात्, साक्षा-त्कारणस्य चारित्रस्यासति प्रतिबन्धके तद्भव एव मुक्तिप्रापकत्वोप-पत्तेः, स्त्रीत्वस्य प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्, अन्यथा तत्र साक्षाच्चारि-त्रार्थितयैव प्रवृत्त्यापत्तेरिति, "मनुष्यस्त्री काचिद् निर्वाति, अविकल-तत्कारणत्वात् पुरुषवत्" इत्यनुमानमपि प्रमाणम्। तदेवं स्त्रीमुक्ति-सिद्धेः सिद्धाः पञ्चदशसिद्धभेदा इति शिवम्।

शब्दानामथ चार्थानां, सम्बन्धोऽस्ति परस्परम् ।
मुक्तिभाजः स्त्रियः स्युस्तत्, सिद्धमेकादशे स्तवे ॥११॥

इति शासनसम्राट्-तपागच्छाधिपति-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जगद्गुरुबालब्र-ह्मचारिभट्टारकाचार्यमहाराजश्रीविजयनेमिसूरीश्वरमहाराजपट्टालङ्कार-शास्त्रविशारदकविरत्नपीयूषपाणिपूज्यपादाचार्यश्रीविजयामृतसूरिवर-सन्दृब्धायां महोदधिकल्पशास्त्रवार्तासमुच्चय - कल्पलतानुसारिण्यां-कल्पलतावतारिकायां एकादशः स्तवकः ।

卐

एवं समीचीनयुक्तिततिभिर्विमतानां विमतीरपास्य तद्द्वारेण सिद्धान्तयन्तः स्वमतं ग्रन्थान्ते प्रयोजन-श्लोकसङ्ख्याऽऽशीर्वादावश्य-कर्तव्यतासूचकं श्लोकचतुष्टयं निर्दिशन्ति सूरिवराः—

(शास्त्रवार्ता०)

एता वार्ता उपश्रुत्य, भावयन् बुद्धिमान् नरः ।
इहोपन्यस्तशास्त्राणां, भावार्थमधिगच्छति ॥५५॥

अन्वयः—बुद्धिमान्, नरः एताः, वार्ताः, उपश्रुत्य, भावयन्, इह, उपन्यस्तशास्त्राणाम्, भावार्थम्, अधिगच्छति ।

(अव०) बुद्धिमान्—प्रेक्षावान् । न तु यः कोऽपीति भावः । नरः—मनुष्यः । एताः—समुपस्थापिता बुद्धिविषयीभूताः । वार्ताः—सिद्धान्तप्रवादान् । उपश्रुत्य—श्रवणविषयतामापाद्य, आकर्ण्येति यावत, भावयन्—चिन्तयन्, अनुसन्दधान इति यावत् । इह—अस्मिन् ग्रन्थे । उपन्यस्तशास्त्राणाम्—समुपस्थापितबौद्धवैशेषिकादि-दर्शनानाम् । भावार्थम्—अभिप्रायतत्त्वम् । अधिगच्छति—प्राप्नोति, निश्चितमिति शेषः ।

(शास्त्रवार्ता०)

शतानि सप्तश्लोकाना-मनुष्टुप्छन्दसां कृतः ।
आचार्यहरिभद्रेण, शास्त्रवार्तासमुच्चयः ॥५६॥

अन्वयः—आचार्यहरिभद्रेण, अनुष्टुप्छन्दसाम्, [illegible]
शतानि, शास्त्रवार्तासमुच्चयः, कृतः ।

(अव०) बुद्धम्—स्वयंबुद्धम् । "सयसंबुद्धाणं" इतिशक्रस्त-वोक्तेः । यम्—बुद्धिविषयीभूतं तीर्थकृतम् । लोकवृत्त्यै—लोकानां जनानां वृत्तिर्जीविका तस्यै तथा । दीक्षादिवसाद्वर्षावधिकालात्प्रागेव नवलोकान्तिका देवा भगवन्तं लोकवृत्त्यै प्रज्ञापयन्ति भगवाँश्च सूर्यो-दयादारभ्य कल्यवर्तसमयपर्यन्तं प्रतिदिनमष्टलक्षाधिकामेकां सौवर्ण-कोटिं ददाति, देवाश्च "वृणुत वरं वृणुत वरम्" इत्युद्घोषयन्ति, तदीयामुद्घोषणामाकर्ण्य यो यन्मार्गयति तस्मै तद्ददाति, तच सर्वं देवा इन्द्रादेशेन पूरयन्ति, एवञ्च भगवान् दीक्षाप्राक्तनवर्षे वार्षिकदान-रूपेण १८०००००० दीनाराणां ×३६० दिवसैर्गुणनात् ३८८८०००००० अशीतिलक्षाधिकाष्टाशीतिकोटिसंवलितमब्जत्रयं दीनाराणां ददाति । तथाचोक्तम्—तिन्नेव य कोडिसया, अट्ठासीइं य हुँति कोडीओ । असीइं च सयसहस्सं, एयं संवच्छरे दिन्नं ॥१॥" दानप्रभावाच दरिद्रा अपि धनाढ्याः सम्पद्यन्ते, लोकानामनायासं जीविका निर्वहतीति समा-यातम् । कवयोऽपि तदीयं दानमधिकृत्य वर्णयन्ति—

तत्तद्वार्षिकदानवर्षविरम द्दारिद्र्यदावानलाः,
सद्यः सज्जितवाजिराजिवसना-लङ्कारदुर्लक्ष्यभाः ।
सम्प्राप्ताः स्वगृहेऽर्थिनः सशपथं, प्रत्याययन्तोऽङ्गनाः,
स्वामिन्! पिङ्गजनैर्निरुद्धहसितैः, के यूयमित्यूचिरे ॥२॥

यद्वा—लोकानां वृत्तिरन्तर्जीवानात्मकधर्मः तस्यै तथा, स च धर्मस्तीर्थकृत्प्रवर्तिततीर्थादेव प्रभवति, नवलोकान्तिकदेवा आगत्य तीर्थस्थापनानिमित्तं प्रबोधयन्तीति ।

यद्वा—लोकानां भुवनानां वृत्तिर्वर्तनं परिवर्तनं स्वरूपप्रकाश-नादि वा लोकवृत्तिस्तस्यै तथा । नवलोकान्तिकैर्देवैः प्रबोधितो दीक्षा-

मादाय केवलज्ञानोत्पादनद्वारेण जगतां स्थितिं प्रकाशयतीति मर्थगागम-वेद्यम् । बोधयन्तः—प्रज्ञापयन्तः, प्रबोधयन्त इति यावत् । यद्यपि स्वयं बुद्धो भगवाँस्तदुपदेशं नापेक्षते तथापि तेषामयमाचारो वर्तते । शिखिजलमरुतः अग्निसलिलप्रमुखा देवाः, नवलोकान्तिकदेवा इति यावत् । यदुक्तम्—"सारस्सय१माइच्चा२वण्ही३वरुणा य४गद्दतोया य ५ तुडिआ६अव्वावाहा७अग्गिच्चा८चेव रिट्ठा य ६ ॥१॥ तुष्टुवुः—अभिष्टुतवन्तः। सर्वोऽप्ययं प्रथमपादप्रतिपाद्योऽर्थः कल्पसूत्राऽऽगमसम्मतः। तथाच कल्पसूत्रे—पुणरवि लोयंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी ॥११०॥ जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा ! बुज्झाहि भगवं ! लोगनाहा ! सयल जगज्जीवहियं पवत्तेहि धम्मतित्थं हिअसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सइत्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजति ॥१११॥ यत्र—बुद्धिविषयीभूते देवाधिदेवे । प्रतिहतभुवनालोकवन्ध्यत्वहेतुः-भुवनं जगदालोकयन्ति प्रकाशयन्तीति भुवनालोकाः, प्रतिहताः कदाचित् कथञ्चिद्बाधिताश्च ते भुवनालोकाः प्रतिहतभुवनालोकाः, लौकिकसूर्यचन्द्रादिप्रकाशास्तेषां वन्ध्यत्वम् वैफल्यम् विफलीकरणम्, प्रतिहतभुवनालोकवन्ध्यत्वम्, तत्र हेतुः कारणम्, प्रतिहतभुवनालोकवन्ध्यत्वहेतुः, केवलज्ञानप्रकाशेन चन्द्रसूर्यादिप्रकाशा वैफल्यमायान्तीति केवलज्ञानस्य भुवनालोकवन्ध्यत्वकारणत्वमवसेयम् । यद्वा अविसर्गान्त "प्रतिहतभुवनालोकवन्ध्यत्वहेतु" इत्येवपाठस्तथा च भुवनालोकवन्ध्यत्वे हेतवः कारणानि, भुवनालोकवन्ध्यत्वहेतवः, प्रतिहताः प्रतिबद्धाः विनाशिता इति यावत् भुवनालोकवन्ध्यत्वहेतवो येन तत्तथेति व्याख्येयम् । ज्ञानम्—केवल-

ज्ञानम् । उदपादि—समजनि । समुत्पन्नमिति यावत् । यस्य—बुद्धि-विषयीभूतस्य देवाधिदेवस्य । वाचाम्—देशनावचनानाम् । कौशलम्—कलामाहात्म्यमिति यावत् । सर्वप्राणिस्वभाषापरिणतिसुभगम्-सर्व-प्राणिनां निखिलजीवानाम् स्वभाषायाम् परिणत्या परिणामेन सुभगं ललितन्तथा । समस्तजीवसम्बन्धिस्वस्वभाषापरिणमनललितम् । अभ-वदिति शेषः । तथाचोक्तं वीतरागस्तवे भगवता हेमचन्द्राचार्य्येण—

यद्योजनप्रमाणेऽपि, धर्मं देशनसद्मनि ।
सम्मान्ति कोटिशस्तिर्यङ्नृदेवाः सपरिच्छदाः ॥१॥
तेषामेव स्वस्वभाषा-परिणाममनोहरम् ।
अप्येकरूपं वचनं, यत्ते धर्मावबोधकृत् ॥२॥

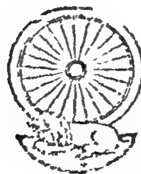
स्वभाषयेव यदीयया वाचा देवतिर्यङ्मनुष्या यथार्थं धर्मस्व-रूपमवबुध्यन्ते इति भावः । एतेन भगवद्वाचां पञ्चत्रिंशद्वाणीगुणा-तिशयसाहित्यं सूचितं भवति । तथाचोक्तमभिधानचिन्तामणौ—

"संस्कारवत्त्वमौदात्त्य-मुपचारपरीतता ।
मेघगम्भीरघोषत्वं, प्रतिनादविधायिता ॥१॥६५॥
दक्षिणत्वमुपनीत-रागत्वं च महार्थता ।
अव्याहतत्वं शिष्टत्वं, संशयानामसम्भवः ॥१॥६६
निराकृतान्योत्तरत्वं, हृदयङ्गमताऽपि च ।
मिथः साकांक्षता प्रस्ता वौचित्यं तत्त्वनिष्ठता ॥१॥६७
अप्रकीर्णप्रसृतत्वम-स्वश्लाघान्यनिन्दता ।
आभिजात्यमतिस्निग्ध-मधुरत्वं प्रशस्यता ॥१॥६८
अमर्मवेधितौदार्य्यं, धर्मार्थप्रतिबद्धता ।
कारकाद्यविपर्यासो, विभ्रमादिवियुक्तता ॥१॥६९

चित्रकृत्त्वमद्भुतत्वं, तथानतिविलम्बिता ।
अनेकजातिवैचित्र्य – मारोपितविशेषता ॥१॥७०
सत्त्वप्रधानता वर्ण-पदवाक्यविविक्तता ।
अव्युच्छित्तिरखेदित्वं, पञ्चत्रिंशच्च वाग्गुणाः ॥१॥७१

तस्मिन्–तादृशे बुद्धिविषयीभूते । **भगवति**–षड्विधैश्वर्य्यशालिनि । **देवाधिदेवे**–तीर्थङ्करे । **भवता**–त्वया । **भक्तिरागः**–सेवाविषयकानुरागः । **धीयताम्**–धार्य्यताम् । आधीयताम् इतिच्छेदे संस्थाप्यतामित्यर्थोऽवसेयः । एवञ्च क्रमशः पादत्रयेण पूजा-ज्ञानवचनातिशयाः प्रतिपादिताः । अपायापगमातिशयं विनाऽनुपपन्नैस्तैराक्षिप्तोऽपायापगमातिशयोऽपि भगवति वेदितव्यो भवतीति । अत्र भगवत्तीर्थकृद्विषयक-कविगतरतिभावाभिव्यञ्जनाद्ध्वनिकाव्यमिदमवसेयम् ।

॥ इति समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥



अथ वृत्तिकृत् प्रशस्तिः

[१]

सिद्धाङ्को जन्मतोऽभूत् सुरगिरिशिखरं स्नात्रकालेऽधवद् यो,
देवं मिथ्यात्विनं यो वरकरहननाऽऽगमयामास बाल्ये ।
एवं मोहं मृगाभं मृगपतिरिव यः संजघानाप बोधं,
तं श्रीवीरं स्तवीमः सततवितसद्-बोधिबोधाय सिद्धम् ॥

[२]

पट्टे वीरजिनस्य पञ्चमगणी, स्वामी सुधर्माभिधो,
जम्बूस्वामियमीश्वरः समभवत्, तत्पट्टभृन्मुक्तिवृत् ।
स्वामी श्रीप्रभवस्ततस्ततयशाः, शय्यंभवः पट्टगा,
इत्येवं बहवो जिनेशवचन-व्याख्याकरा जज्ञिरे ॥

[३]

अष्टौ निर्ग्रन्थनाम्नि प्रथमत उदिताः सूरिराजोऽत्र गच्छे,
रेजुः श्रीकोटिगच्छे तदनु मुनिमिताः सुस्थिताद्या मुनीन्द्राः ।
सूरिश्चन्द्र स्फुरद्वा-नुरजनि रजनीकान्तवच्चन्द्रगच्छे,
सामन्ताचार्यमुख्या अजनिषत वना-द्वासिगच्छे दश द्विः ॥

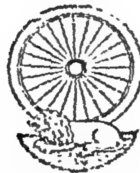
[४]

गच्छेऽष्टौ वटनाम्नि धाम्नि महसां, श्रीसर्वदेवादयो,
जाग्रत्तेजसि सद्यशोऽम्भसि तपा-गच्छे जगच्चन्द्रतः ।
श्रीसोमप्रभ-सोमसुन्दर-मुनि-श्रीहीर-देवादयो—
ऽनेके धर्मधुरन्धराः शुशुभिरे, श्रीवृद्धिचन्द्रास्ततः ॥

चित्रकृत्त्वमद्भुतत्वं, तथानतिविलम्बिता ।
अनेकजातिवैचित्र्य - मारोपितविशेषता ॥१॥७०
सत्त्वप्रधानता वर्ण-पदवाक्यविविक्तता ।
अव्युच्छित्तिरखेदित्वं, पञ्चत्रिंशच्च वाग्गुणाः ॥१॥७१

तस्मिन्—तादृशे बुद्धिविपयीभूते । **भगवति**—षड्विधैश्वर्य्यशालिनि । **देवाधिदेवे**—तीर्थङ्करे । **भवता**—त्वया । **भक्तिरागः**—सेवाविषयकानुरागः । **धीयताम्**—धार्य्यताम् । आधीयताम् इतिच्छेदे संस्थाप्यतामित्यर्थोऽवसेयः । एवञ्च क्रमशः पादत्रयेण पूजा-ज्ञानवचनातिशयाः प्रतिपादिताः । अपायापगमातिशयं विनाऽनुपपन्नैस्तैराक्षिप्तोऽपायापगमातिशयोऽपि भगवति वेदितव्यो भवतीति । अत्र भगवत्तीर्थकृद्विषयक-कविगतरतिभावाभिव्यञ्जनाद्ध्वनिकाव्यमिदमवसेयम् ।

॥ इति समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥



अथ वृत्तिकृत् प्रशस्तिः

[१]

सिंहाङ्को जन्मतोऽभूत सुरगिरिशिखरं स्नात्रकालेऽधवद् यो,
देवं मिथ्यात्विनं यो वरकरहननान्नामयामास बाल्ये ।
एवं मोहं मृगाभं मृगपतिरिव यः संजघानाप बोधं,
तं श्रीवीरं स्तवीमः सततविततसद्-बोधिबोधाय सिद्धम् ॥

[२]

पट्टे वीरजिनस्य पञ्चमगणी, स्वामी सुधर्माभिधो,
जम्बूस्वामियमीश्वरः समभवत्, तत्पट्टभृन्मुक्तिभृत् ।
स्वामी श्रीप्रभवस्ततस्ततयशाः, शय्यंभवः पट्टमा,
इत्येवं बहवो जिनेशवचन-व्याख्याकरा जज्ञिरे ॥

[३]

अष्टौ निर्ग्रन्थनाम्नि प्रथमत उदिताः सूरिराजोऽत्र गच्छे,
रेजुः श्रीकोटिगच्छे तदनु मुनिमिताः सुस्थिताद्या मुनीन्द्राः ।
सूरिश्चन्द्र स्फुरद्भा-नुरजनि रजनीकान्तवच्चन्द्रगच्छे,
सामन्ताचार्यमुख्या अजनिषत वना-द्वासिगच्छे दश द्विः ॥

[४]

गच्छेऽष्टौ वटनाम्नि धाम्नि महसां, श्रीसर्वदेवादयो,
जाग्रत्तेजसि सद्यशोऽम्भसि तपा-गच्छे जगच्चन्द्रतः ।
श्रीसोमप्रभ-सोमसुन्दर-मुनि--श्रीहीर-देवादयो—
ऽनेके धर्मधुरन्धराः शुशुभिरे, श्रीवृद्धिचन्द्रास्ततः ॥

संवत् २०१२ ना चातुर्मासमां दादर-श्रीशान्तिनाथजी उपाश्रये
आ ग्रन्थना अगाउथी ग्राहक थनार सद्गृहस्थोनी—



क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख्या
१	श्री शान्तिनाथजी पेढी, दादर	५१
२	शेठ भगाजी गमाजी, दादर	७
३	” चुनीलाल केशवलाल बोटादवाला, दादर	११
४	” वरधीचन्दजी गंगारामजी, दादर	५
५	” मनसुखलाल देवसीभाई पारेख दादर (हा. अमृतलाल)	५
६	” मोहनलाल अजेराज महेता, १६८ झवेरी बजार	५
७	” जगजीवनदास केशवलाल बोटादवाला, दादर (हा. प्रकाशभाई)	५
८	” लीलाधर वीरचन्द महेता, दादर	५
९	” नवनीतलाल अनोपचन्द शाह, दादर	५
१०	” गीसुलाल फोजमलजी, दादर	५
११	शेठ बाबुलाल तिलोकजीनी कुं०, लालवाडी	११
१२	” देवीचन्दजी चनेचन्दनी कुं०, नायगाम	५
१३	” ताराचन्दजी पुखराजजीनी कुं०, लालवाडी	५
१४	” जुगराजजी जेराजजी, लालवाडी	५
१५	” पोपटलाल सुरचन्द महुवावाला, दादर	५
१६	” मन्नालाल शांतिलाल शाह, दादर	१०

क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख्या
१७—	" मोठालाल देवीचन्दजी, दादर	५
१८—	" भेरुलालजी प्रेमचन्दजी, दादर	५
१९—	" कपूरचन्दजी कस्तूरचन्दजी, दादर	५
२०—	" देवीचन्दजी गमनाजी, दादर	५
२१—	" गणेशमलजी वनेचन्दजी, दादर	५
२२—	" पुखराजजी भूरमलजी दोवाजी, दादर	५
२३—	" चुनीलालजी नवलाजी, दादर	५
२४—	" चन्दनमल धुलाजीनी कुं०, दादर (हा. अमृतलाल)	५
२५—	" डाह्यालाल वाडीलाल रणूजवाला, दादर	५
२६—	" मूलचन्द मनसुखलाल एण्ड कुं०, लालवाडी	७
२७—	" गुलाबचन्दजी सुमरमलजी, दादर	५
२८—	" भूताजी वनाजी, दादर	५
२९—	" मगनलाल करसनजी, दादर	५
३०—	" जे० हेमचन्दनी कुं०, मस्जीदवन्दर	५
३१—	" कुपाजी सदाजी, परेल	५
३२—	" फुलचन्द छोगमलनी कुं० कालाचोकी	५
३३—	शेठ ताराचन्दजी अमीचन्दजीनी कुं०, कालाचोकी (हा. बाबूलालजी)	५
३४—	" चुनीलाल मांगीलालनी कुं०, दादर	५
३५—	" मनसुखलाल मणीलाल अमदावादवाला	५
३६—	" पद्मशी प्रेमजी ओटाद जीनवाला	५
३७—	" भँवरलाल जेठमलजी, एल्फीस्टन रोड	५
३८—	" जयन्तीलाल रतनचन्द, लुहारचाल	५
३९—	" वसनजी रतनशी, शिव	५
४०—	" छोगीलाल नगलदास (हा. चम्पकलाल)	५

[५]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥

[६]

[illegible] चक्रे विशदविशदं पूर्णपुण्यप्रभावैः,
[illegible] शास्त्रीशारदोऽसौ ।
काव्यन्यायागमनिगमवित्तत्त्व[illegible] :
सूरिर्नाम्नाऽप्यमृतपदभृद् राजते राजमानः ॥

[७]

सम्यक्तत्त्वं समभिलषता शास्त्रवार्ताख्यग्रन्थे,
धैर्यं धृत्वा वितनमतिना भद्रदं हारिभद्रम् ।
प्रौढप्रौढं वचनरचनं चर्वणाचर्वणीयं,
दुर्धृत्तानां रमयति मनो-हारि नो हारिभद्रम् ॥

[८]

शास्त्रावार्ता- गहनगहनग्रन्थगूढार्थभावान् ,
व्यक्तीकर्तुं मुनिवरयशोवाचको लब्धवर्णः ।
वृत्तिं चक्रे सुरनरलता-कल्पकामार्थपूर्णां,
स्याद्वादान्तां विबुधफलिनां कल्पपूर्वां लताख्याम् ॥

[९]

सेयं तर्क-प्रकरविभवा पद्यलालित्यलीला ।
नव्यन्यायप्रकटघटना गद्यगाम्भीर्यशीला ॥
तत्त्वप्राप्तिः कुमतिविमतेः खण्डनी मण्डनी वा ।
सद्भावानामधिगमयति श्रीयशोवाग्विलासम् ॥

[१०]

तस्यामस्यां प्रवेशाय, त्रिदुपामुपकारिका ।
तरणिरिव सत्सिन्धौ, कल्पलतावतारिका ॥

[११]

उपदङ्गे महारङ्गे, मोहमय्याः सदादरे ।
दादरे शान्तिनाथोपा-श्रये ज्येष्ठस्थितिस्थितैः ॥

[१२]

श्रेष्ठिश्रीप्रेमचन्द्राख्य-तेजराजाभिधादिभिः ।
सद्व्यवस्थापकैर्मुख्यै-र्विज्ञप्तैर्भूरिभक्तितः ॥

[१३]

वैक्रमेऽनलचन्द्रयो-नेत्रशरदि कार्तिके ।
राकार्कवासरेऽकारि, विजयामृतसूरिभिः ॥

[१४]

इमामालम्ब्य धीमन्तः, सन्तः सन्तु सुराजिताः ।
कल्पलताफलप्राप्तेः, प्राप्तबोधाः सुराजिताः ॥

[१५]

सद्भिः पापठ्यमानेय-माचन्द्रार्कमबाधिता ।
विद्वद्भिः शोधिता कर्म-मोक्षमातनुतां सताम् ॥

[१६]

वृत्तयेऽत्र निरातङ्कं, प्रवृत्तिः प्रथते नृणाम् ।
धर्मे शास्त्रे परं वृत्तिर्विगलति विवेकिनाम् ॥

[१७]

वृत्तिमिमां समारच्य, श्रेयो यत् समुपार्जितम् ।
दूरीभूयाद्भवभ्रान्ति - र्भूयाद्भूतिस्ततस्तता ॥

॥ श्रेयोऽस्तु श्रीश्रमणसङ्घस्य ॥

संवत् २०१२ ना चातुर्मासप्रसंगे दादर—श्रीशान्तिनाथजी उपाश्रये
आ ग्रन्थना अगाउथी ग्राहक थएला सद्गृहस्थोनी—

❋ नामावली ❋

क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख्या
१—	श्री शान्तिनाथनी पेढी, दादर	५१
२—	शेठ भगाजी रामाजी, दादर	७
३—	" चुनीलाल केशवलाल बोटादवाला, दादर	११
४—	" वरधीचन्दजी गंगारामजी, दादर	५
५—	" मनसुखलाल देवसीभाई पारेख दादर (हा. अमृतलाल)	५
६—	" मोहनलाल अजेराज महेता, १६८ झवेरी बजार	५
७—	" जगजीवनदास केशवलाल बोटादवाला, दादर (हा. प्रकाशभाई)	५
८—	" लीलाधर वीरचन्द महेता, दादर	५
९—	" नवनीतलाल अनोपचन्द शाह, दादर	५
१०—	" गीसुलाल फोजमलजी, दादर	५
११—	शेठ बाबुलाल तिलोकजीनी कुं०, लालवाडी	११
१२—	" देवीचन्दजी वनेचन्दनी कुं०, नायगाम	५
१३—	" ताराचन्दजी पुखराजजीनी कुं०, लालवाडी	५
१४—	" जुगराजजी जेराजजी, लालवाडी	५
१५—	" पोपटलाल सुरचन्द महुवावाला, दादर	५
१६—	" मन्नालाल शांतिलाल शाह, दादर	१०

क्रमाङ्क नाम		प्रतिसंख्या
१७—	" मोठालाल देवीचन्दजी, दादर	५
१८—	" भेरूलालजी प्रेमचन्दजी, दादर	५
१९—	" कपूरचन्दजी कस्तूरचन्दजी, दादर	५
२०—	" देवीचन्दजी गमनाजी, दादर	५
२१—	" गणेशमलजी वनेचन्दजी, दादर	५
२२—	" पुखराजजी भूरमलजी दोवाजी, दादर	५
२३—	" चुनीलालजी नवलाजी, दादर	५
२४—	" चन्दनमल धुलाजीनी कुां०, दादर (हा. अमृतलाल)	५
२५—	" डाह्यालाल वाडीलाल रणुजवाला, दादर	५
२६—	" मूलचन्द मनसुखलाल एण्ड कुां०, लालवाडी	७
२७—	" गुलाबचन्दजी सुमरमलजी, दादर	५
२८—	" भूताजी वनाजी, दादर	५
२९—	" मगनलाल करसनजी, दादर	५
३०—	" जे० हेमचन्दनी कुां०, मस्जीदबन्दर	५
३१—	" कुपाजी सदाजी, परेल	५
३२—	" फुलचन्द छोगमलनी कुां० कालाचोकी	५
३३—	शेठ ताराचन्दजी अमीचन्दजीनी कुां०, कालाचोकी (हा. बाबूलालजी)	५
३४—	" चुनीलाल मांगीलालनी कुां०, दादर	५
३५—	" मनसुखलाल मणीलाल अमदावादवाला	५
३६—	" पदमशी प्रेमजी वोटाद जीनवाला	५
३७—	" भँवरलाल जेठमलजी, एल्फीस्टन रोड	५
३८—	" जयन्तीलाल रतनचन्द, लुहारचाल	५
३९—	" वसनजी रतनशी, शिव	५
४०—	" भोगीलाल बबलदास (हा. चम्पकलाल)	५

संवत् २०१२ ना चातुर्मासप्रसंगे दादर-श्रीशान्तिनाथजी उपाश्रये
आ ग्रन्थना अगाउथी ग्राहक थएला सद्गृहस्थोनी—

❀ नामावलि ❀

क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख्या
१—	श्री शान्तिनाथनी पेढी, दादर	५१
२—	शेठ भगाजी रामाजी, दादर	७
३—	" चुनीलाल केशवलाल बोटादवाला, दादर	११
४—	" वरधीचन्दजी गंगारामजी, दादर	५
५—	" मनसुखलाल देवसीभाई पारेख दादर (हा. अमृतलाल)	५
६—	" मोहनलाल अजेराज महेता, १६८ झवेरी बजार	५
७—	" जगजीवनदास केशवलाल बोटादवाला, दादर (हा. प्रकाशभाई)	५
८—	" लीलाधर वीरचन्द महेता, दादर	५
९—	" नवनीतलाल अनोपचन्द शाह, दादर	५
१०—	" गीसुलाल फोजमलजी, दादर	५
११—	शेठ बाबुलाल तिलोकजीनी कुं०, लालवाडी	११
१२—	" देवीचन्दजी वनेचन्दनी कुं०, नायगाम	५
१३—	" ताराचन्दजी पुखराजजीनी कुं०, लालवाडी	५
१४—	" जुगराजजी जेराजजी, लालवाडी	५
१५—	" पोपटलाल सुरचन्द महुवावाला, दादर	५
१६—	" मन्नालाल शांतिलाल शाह, दादर	१०

क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख्या
६५—	" सुखराजमल फौजमलजी, भंडगाम	१
६६—	" फतेचन्द चमनीरामजी, दादर	१
६७—	" नवीनचन्द धनजी, मालदेव	१
६८—	" भूगनराज भीखमचन्दजी चाणोदवाला, दादर	१
६९—	" गुलाबचन्द मूलचन्दजी शिवरी	१
७०—	" चांदमल वीरचन्द गाहेना, दादर	१
७१—	" चनाजी पूनाजी, नवी हनुमान गली, मुम्बई	२
७२—	" फतेचन्द रामाजी टोलीया, दादर	१
७३—	" चंदनमलजी पनाजी, पचूर्सटन रोड (द्वा. शोभागमलजी)	१
७४—	" हेमराज शिवजी, कोलर पोल	२
७५—	" कानजी रतनशी पोरा, दादर	१



घंटन प्रेस जैन संघ तरफथी छपाववी पहेला

— ग्राहकोना शुभनामो —

१-	शेठ भारशी भाई (द्वा॰ कुंवरबाई)	५
२-	" रमणलाल अमृतलाल शाह	१
३-	" चीमनलाल नगीनदास (द्वा॰ दिनकरलाल चिमनलाल पालनपुरवाळा)	५
४-	" छोटालाल गोकुळभाई, मुम्बई	५
५-	" मोहनलाल त्रिभुवनदास, कुमारपाळवाळा	५
६-	" चमनलाल माणेकलाल घानेरावाळा	५
७-	" मोतीलाल जीवणलालभाई पालनपुरवाळा	१

क्रमांक	नाम	प्रतियाँ
[illegible]	" [illegible]	५
[illegible]	" [illegible] ([illegible])	५
[illegible]	" [illegible]	५
[illegible]	" [illegible]	५
[illegible]	" [illegible]	२
[illegible]	" [illegible]	३
[illegible]	" [illegible]	२
[illegible]	" [illegible]	२
[illegible]	[illegible], दादर	१
५०—	" अमृतलाल नाथालाल [illegible]वाला, दादर	२
५१—	" गंभीरमल [illegible]चन्दजी, [illegible]	१
५२—	" प्रतापमल कृष्णाजी परेल	२
५३—	" बाबूभाई मोहनलाल महेता, [illegible]	२
५४—	शेठ सोमचन्द दलसुखराम अहमदाबादवाला, दादर	२
५५—	" मूलचन्दजी छेनाजी, दादर	२
५६—	" नेनमल हिम्मतमलजी, दादर	२
५७—	" प्रतापचन्दजी आसकरनजी [illegible], दादर	२
५८—	" जुहारमलजी हजारीमलजी बीजोवावाला, दादर	१
५९—	" फूलचन्दजी भभूतमलजी, दादर	१
६०—	" नन्दरामजी अमराजी, [illegible] रोड	१
६१—	" हिमतमलजी जवानमलजी, दादर	२
६२—	" जुहारमलजी गुलाबचन्दजी, दादर	२
६३—	" लालचन्दजी जुहारमलजी मुत्ता, पोइबावडी	१
६४—	" ताराचन्द बोरीदासजी, परेल	१

क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख्या
६५—	" जुहारमल उमेदमलजी, नायगाम	१
६६—	" फत्तेचन्द चमनीरामजी, दादर	१
६७—	" प्रवीणचन्द धनजी, तारदेव	१
६८ —	" छगनराज भीखमचन्दजी वालीवाला, दादर	१
६९ —	" गुलाबचन्द मूलचन्दजी शिवरी	१
७०—	" पोपटलाल वीरपाल महेता, दादर	१
७१—	" वनाजी धूलाजी, नवी हनुमान गली, मुम्बई	२
७२—	" भवेरचन्द रामाजी टोलीया, दादर	१
७३—	" प्रेमचन्दजी भगाजी, एलफीस्टन रोड (हा. शेषामलजी)	१
७४—	" रतनशी शिवजी, लोअर परेल	२
७५—	" कानजी रतनशी वोरा, दादर	१



कोटन ग्रेइन जैन संघ तरफथी अगाउथी थएला

— ग्राहकोना शुभनामो —

१-	शेठ धारशी भाई (हा॰ कुँवरबाई)	५
२-	" रमणलाल अमृतलाल शाह	१
३-	" चीमनलाल नगीनदास (हा॰ हिंमतलाल चिमनलाल पालनपुरवाला)	५
४-	" छोटालाल गोदडभाई, मुम्बई	५
५-	" मोहनलाल त्रिभुवनदास, कुंभाराणवाला	५
६-	" दलपतलाल माणेकलाल धानेरावाला	५
	हा जोईतारामभाई पालनपुरवाला	१

क्रमाङ्क	नाम	प्रतिसंख
८–	” कांतिलाल चिमनलाल पालनपुरवाला	
९–	” चोथमलभाइ देवीचन्द	
१०–	श्रीमती लक्ष्मीबहेन चुनीलालभाई (हा. नटवरलाल चुनीलाल पाटणवाला)	
११–	शेठ भोगीलाल अनराजभाई ढालोपवाला	[illegible]
१२–	” चीमनाजी उमाजी सांडेरावाला	[illegible]
१३–	” भभूतमलजी चुनीलाल कोशोलाववाला	[illegible]
१४–	” नगीनदास ओलमचन्द	[illegible]
१५–	” भमराव गंगारामभाई (हा. लक्ष्मीचन्दभाई)	१
१६–	” पानाचन्द लालचन्दभाई	१
१७–	शेठ रिखबचन्द अनराजभाई	५
१८–	” गेमाजी दोनाजीभाई	५
१९–	” जीवाभाई जोराजीभाई	५
२०–	” नालचन्द दीपचन्दभाई	२
२१–	” रसीकलाल मूलचन्दभाई	१
२२–	” मगनलाल मायाचन्दभाई तथा	
	” गिरधरलाल मायाचन्दभाई	५
२३–	” कचराभाई रवचन्दभाई (हा. शांतिलाल के० शाह)	५
२४–	” मंछाचन्द मेघराजभाई	५
२५–	” जोईताराम लालाचन्दभाई (हा. बाबूलाल जोईताराम)	५
२६–	” मोतीराम हीराचन्दभाई	१
२७–	” कालीदास ईश्वरभाई तथा शेठ रतिलाल चंदुलाल	५
२८–	” चंदुलाल दोलचन्दभाई	१
२९–	” बचुभाई ककलचन्द	५
३०–	” लक्ष्मीचन्द छगनलाल	१
३१–	” बाबुलाल कालीदास टोकर	१

आगमोद्धारक-ग्रन्थमालायाः षट्चत्वारिंशं रत्नम् ।

णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ।

आगमोद्धारक-आचार्यप्रवरश्री-आनन्दसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः

आगमोद्धारक-कृतिसन्दोहः

(तस्याऽयमष्टमो विभागः)



संशोधकः

पूज्य-गच्छाधिपति-आचार्य-श्रीमन्माणिक्यसागरसूरीश्वरशिष्यः
शतावधानी मुनिराज-लाभसागरगणिः

वीर संवत् २४९७ विक्रम सं. २०२७ आगमोद्धारक सं. २१

प्रतयः ५००] [मूल्यम् : १-५०